अनुक्रम

स्थितियों में भी अपने को ढालने की अद्भुत क्षमता थी। कलकत्ता के प्रचलित साहित्यिक प्रतिमानों के अनुरूप उन्हें अपनी काव्य प्रतिभा को समायोजित करने में बिलकुल समय न लगा। सम्पादक के रूप में भी उन्होंने सराहनीय स्फूर्ति और संयम का परिचय दिया और यह कहा जा सकता है कि वे बाङ्ला पत्रकारिता के अगुओं में एक थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में, गद्य और पद्य दोनों के प्रयोग द्वारा, उन्होंने उदाहरणीय शैली का प्रवर्तन किया। दैनिक 'प्रभाकर' के सम्पादक के तौर पर (जो पहले सप्ताह में एक बार फिर तीन दिन और अन्ततः प्रतिदिन छपने लगा) उन्होंने जल्दी ही एक ऐसे प्रभावशाली पत्रकार की स्थिति बना ली, जिसका लेखन [गद्य और कविता दोनों] बुद्धि और परिहास से सम्पन्न शक्ति की एक ऐसी सत्ता थी, जिसे उन दिनों पहचाना ही गया था। आनेवाले समय में 'प्रभाकर' उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का एक अग्रणी पत्र साबित हुआ और निश्चित रूप से दुर्जेय।

इस पृष्ठभूमि से जोड़कर देखने पर स्पष्ट है कि बाङ्ला-साहित्य के वरिष्ठ और प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार, बंकिमचन्द्र चटर्जी, किसी समय ये अपने गुरु [कालेज के दिनों में, बंकिम के सर्जनात्मक लेखन के क्षेत्र में दीक्षा, ईश्वरचन्द्र गुप्त के संरक्षण में उन्हीं के अखबार 'प्रभाकर' के पन्नों पर हुई] के बारे में अपेक्षया कठोर रुख अपनाते हैं। 'कलकत्ता रिव्यू' [1871], में प्रकाशित 'बाङ्ला साहित्य' लेख में उन्होंने लिखा :

> "इनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं के सर्जक के तौर पर उनका [ईश्वरचन्द्र] पहला स्थान है। कवि और सम्पादक के रूप में उनकी सफलता का कारण, उनकी यह विशेषता है। लेकिन, उनके गुणों का कमाल यहीं तक सीमित रह जाता है। कवि में उपस्थित उच्चतर स्तर की अपेक्षाओं का उनमें अभाव था और उनकी रचनाएँ बेहद अपरिपक्व और अ-परिष्कृत हैं। उनका लेखन घोर अश्लीलता से विकृत है। यहाँ हमने उनकी चर्चा एक निश्चित उद्देश्य से की है, जिससे, पाठकों को उस समय की साहित्यिक क्षमता और रुचि की झलक
> ... गुप्त जैसे निम्न स्तर के कवि लोगों की दृष्टि में
> ...प्त की मृत्यु हुए अभी बारह बरस भी नहीं बीते,
> ... मशहूर रहते हैं।"

...ते समय, बंकिमचन्द्र शायद
...र 'प्रभाकर' में छपती रही हैं,
...द में प्रकाशित भी हुईं। कवि के
मित्रों के बीच काम सन् 1862 में

छपे। चौथा भाग सन् 1869 में आया। 'प्रभाकर' मे बंगाल के 'कवियालों'-हारू ठाकुर, भोला मोदरा, एथोनी फिरंगी, राम बसु, गुजला गुइल, रासु नृसि निताई बैरागी और अन्य—के क्रमिक उद्धरणों (उनके जीवन-वृतान्तो औ कुछ रचनाओं के साथ) मे व्यक्त ईश्वरचन्द्र की दृष्टि का, बंकिम के मूल्याक पर अवश्य ही प्रभाव पड़ा होगा। लेकिन, अपने गुरु के प्रति की गयी ज्यादती क सुधारने की मशा, बकिम की पुस्तक 'ईश्वरचन्द्र गुप्तेर जीवन चरित ओ कविता में झलकती है। इस पुस्तक मे उन्होंने ईश्वरचन्द्र को एक कवि और बाङ्ल साहित्य के संरक्षक के रूप मे समझने की कोशिश की है। एक सच्चे बाङ्ला कवि के रूप मे चित्रित करते हुए उनकी कविताओं को माँ देवी का प्रसाद माना। बंकिम द्वारा संग्रहीत और सम्पादित, ईश्वरचन्द्र गुप्त की कविताएँ, 'कविता संग्रह' शीर्षक से ही सन् 1885 मे छपी। बंकिमचन्द्र की ईश्वरचन्द्र गुप्त विषयक पुस्तक मे व्यक्त विचार पहली बार इसी संग्रह की भूमिका के रूप मे प्रकाशित हुए।] इस भूमिका मे उन्होंने लिखा .

"मधुसूदन, हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र, रवीन्द्रनाथ शिक्षित बंगालियों के कवि हैं, जबकि एक कवि के रूप मे ईश्वरचन्द्र पूरे बंगाल के हैं। आजकल सच्चे बंगाली कवि पैदा नही होते, ऐसी सम्भावना के रास्ते बन्द हैं" हमें बंगाल-वासियो की गरिमा को बनाये रखना है। हमें अपनी मातृभूमि को प्यार करना ही है। माँ के लिए जो पवित्र अर्पण है, उसे हमे सावधानी से सुरक्षित रखना है। अपनी धरती की कोख से पैदा हुए ये कवि माँ द्वारा प्रदत्त उपहार हैं। यह सच्ची बाङ्ला भाषा है, असली बंगाल की याद दिलाती ये रचनाएँ, माँ द्वारा प्रदत्त प्रसाद हैं।"

बिना किसी शका के कहा जा सकता है कि किसी कवि के सन्दर्भ मे व्यक्त ये विचार, उसका श्रेष्ठतम अभिनन्दन है। कवि रूप में ख्याति की ओर अग्रसर किसी व्यक्ति की रचनाओं को प्रामाणिक ठहराने मे अधिक कृपापूर्ण विचार और क्या हो सकता है? बहुत समय बाद, ईश्वरचन्द्र गुप्त के ऊपर अपने बाङ्ला विनिबन्ध [मोनोग्राफ़] मे ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी लगभग बंकिमचन्द्र के ही विचारों को प्रतिध्वनित करते हैं। पुस्तक के अन्तिम भाग में वे लिखते हैं :

"ईश्वरचन्द्र ठेठ बंगाल के एक कवि थे। एक सच्चे बाङ्ला कवि। यदि एक ओर उनकी कविताओं के माध्यम से उस समय के बंगाल की भीतरी दुनिया की एक झलक मिलती है, तो दूसरी ओर घर घर मे प्रचलित बाङ्ला

आरम्भिक जीवन

ईश्वरचन्द्र गुप्त का जन्म मार्च 1812 को कचनपाली (आजकलकंचरापारा के नाम से प्रसिद्ध) के एक वैद्य परिवार मे हुआ। उनके पिता हरिनारायण साधन-विपन्न थे और उन्हें आयुर्वेद के व्यवसाय से अजित थोड़ी-सी आमदनी के बूते पर ही एक वड़े परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता था। उन दिनो आयुर्वेद का पेशा, मुख्यतः वैद्य समुदाय के लिए सुरक्षित था। लेकिन कविराजजी (बाड्ला मे वैद्य का प्रचलित नाम) का पेशा एक बड़े परिवार का खर्च चलाने मे दिन-ब-दिन नाकामयाब साबित हुआ। अत, वे इस धन्धे को छोड पास के सियालडाँग के कुटि नामक स्थान पर एक निश्चित नौकरी कर ली, फलस्वरूप एक निश्चित मासिक आमदनी होने लगी। ईश्वर की माँ, जिनसे उनका वेहद लगाव था, एक धार्मिक स्त्री थी। लेकिन जब वे दस वर्ष के थे तभी उनकी माँ चल बसी। उनके लिए यह सदमा बर्दाश्त करना दुखद था, खास तौर पर इसलिए क्योंकि उनके पिता ने दूसरी शादी रचा ली।

ईश्वरचन्द्र सौतेली माँ के होने का विचार मन मे न बिठा सके, और घर छोड दिया। घर छोड़ने का अर्थ था पढ़ाई और घर की सुरक्षा से वंचित होना। लेकिन, वे आगे बढ़कर सारी मुसीबतों को मोल लेने के लिए तैयार थे पर सौतेली माँ का सौतेला बेटा बनना उन्हें मंजूर न था।

कंचरापारा, कलकत्ता मे उत्तर की ओर, लगभग पचास किलोमीटर दूर भागीरथी नदी की दूसरी ओर, त्रिवेणी के ठीक सामने है। उस समय यह एक छोटा-सा गाँव था और एक बड़े रेलवे-शहर के रूप में उसका विकास अभी होना था। शिक्षित मध्यवर्गीय लोगों के गाँव, नैहटी, गरीफा, हालीशहर, कुमारहट्टा और श्यामनगर, करीब ही थे। कलकत्ता से इन गाँवों की नजदीकी यहाँ के निवासियों

आरम्भिक जीवन

ईश्वरचन्द्र गुप्त का जन्म मार्च 1812 को कचनपाली (आजकलकंचरापारा के नाम से प्रसिद्ध) के एक वैद्य परिवार में हुआ। उनके पिता हरिनारायण साधन-विपन्न थे और उन्हें आयुर्वेद के व्यवसाय से अर्जित थोड़ी-सी आमदनी के बूते पर ही एक बड़े परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता था। उन दिनों आयुर्वेद का पेशा, मुख्यतः वैद्य समुदाय के लिए सुरक्षित था। लेकिन कविराजजी (बाङ्ला में वैद्य का प्रचलित नाम) का पेशा एक बड़े परिवार का खर्च चलाने में दिन-ब-दिन नाकामयाब साबित हुआ। अतः, वे इस धन्धे को छोड़ पास के सियालडांग के कुटि नामक स्थान पर एक निश्चित नौकरी कर ली, फलस्वरूप एक निश्चित मासिक आमदनी होने लगी। ईश्वर की माँ, जिनसे उनका बेहद लगाव था, एक धार्मिक स्त्री थी। लेकिन जब वे दस वर्ष के थे तभी उनकी माँ चल बसी। उनके लिए यह सदमा बर्दाश्त करना दुश्वद था, खास तौर पर इसलिए क्योंकि उनके पिता ने दूसरी शादी रचा ली।

ईश्वरचन्द्र सौतेली माँ के होने का विचार मन में न बिठा सके, और घर दिया। घर छोड़ने का अर्थ था पढ़ाई और घर की सुरक्षा से वंचित होना। • वे आगे बढ़कर सारी मुसीबतों को मोल लेने के लिए तैयार थे पर सौ का सौतेला बेटा बनना उन्हें मंजूर न था।

कंचरापारा, कलकत्ता से उत्तर की ओर, लगभग पचास किम भागीरथी नदी की दूसरी ओर, त्रिवेणी के ठीक सामने है। उस समय यह सा गाँव था और एक बड़े रेलवे-शहर के रूप में उसका विकास अभ शिक्षित मध्यवर्गीय लोगों के गाँव, नैहाटी, गरीफा, हालीशहर, श्यामनगर, करीब ही थे। कलकत्ता से इन गाँवों की नजदीकी

उपयोग हुआ होता, तो उनकी कविता, उनकी रचनाएँ और समाज पर उनके योगदान का प्रभाव, गुणात्मक तौर पर भिन्न होता। मेरा विश्वास है कि यदि, उन्हें अपने समकालीन कृष्णमोहन बनर्जी या बाद के ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह अच्छी शिक्षा मिली होती, तो बाङ्ला-साहित्य का उनके समय पर्याप्त विकास हुआ होता और बंगाल के विकास की अवधि तीस साल घट गयी होती। उनकी रचनाओं में दो चीजों की अनुपस्थिति पर मुझे गहरा दुख होता है—परिष्कृत रुचि की कमी और ऊँचे आदर्श का अभाव।"

आगे बढ़कर बंकिमचन्द्र अपने समय के सम्भावित लेखकों को चेतावनी भी देते हैं—

"आज की पीढ़ी की अपनी युवा-प्रतिभाओं को मेरी सलाह है कि, लिखने, पढ़ने और गणित सीखने के बाद ही कागज कलम उठाओ। महान पुरुषों की जिन्दगी के अध्ययन से हम बहुत कुछ सीखते हैं। ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवन से यह सूत्र निकलता है कि बिना उचित शिक्षा के जीनियस पूरी तरह सृजनशील नहीं हो सकता।"

ये सभी सन्दर्भ, ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवन के शैक्षणिक पहलू की कमियों से जुड़े हैं। लेकिन ये कमियाँ उन्हें अपनी योग्यताओं और दृढ़ता के बल पर निश्चित दिशा की ओर बढ़ने से न रोक सकीं और न ही रोक सकती थीं। रास्ते में इतने गड्ढों और बहुत सारे झटकों के चलते, प्रगति की सहज गति की अवरुद्धता के बावजूद, वे एक विशिष्ट व्यक्ति बनना चाहते थे और अन्ततः, दरअसल वे बने भी। इस बीच उन्होंने कलकत्ता के 'कवियालों' से भाईचारा साधा। ग्रामीण 'कवियालों' से सम्बन्ध साधने में वे अभ्यस्त थे, जैसा कि उन्होंने उन दिनों किया, जब वे अपने घर कांचरापारा में रहते समय उनकी प्रस्तुतियों के लिए उन्होंने गाने लिखे। सभी उनके बुद्धि-चातुर्य और तत्काल कविता गढ़ने की क्षमता से प्रसन्न हुए। हालाँकि, उनका संस्कृत ज्ञान नगण्य था फिर भी अपनी तेज मेधा के सहयोग से सुने गये कठिन श्लोक का तत्त्व निचोड़ लेते; थोड़े या बिना किसी प्रयास के उसे बाङ्ला में ढाल देते। कई प्रत्यक्ष-दर्शियों ने, जिनमें उनके मित्र और करीबी शामिल हैं, उनके कवि व्यक्तित्व के आशु काव्य-गुण की पुष्टि की है—किसी भी मानदण्ड से एक कठिन उपलब्धि। ईश्वरचन्द्र गुप्त के बचपन के एक घनिष्ठ मित्र द्वारा प्रमाणित इस तरह का एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य, बंकिमचन्द्र द्वारा लिखित (जिसका हवाला पहले दिया जा चुका है) ईश्वरचन्द्र के जीवन-चरित में, उपस्थित है। शब्द का सही भाव व्यक्त करने के सन्दर्भ में ईश्वरचन्द्र एक विलक्षण प्रतिभासम्पन्न बालक थे। ऐसा

बंगाल के विद्रोही कवि, स्वर्गीय काजी नजरूल इस्लाम (1899-1978) जब दस या ग्यारह वर्ष के थे तभी अपने गाँव के घुमक्कड़ गवैयों की पार्टी के लिए कभी-कभी 'लेटो' (बंगाल के सीमान्त जिलों में प्रचलित एक प्रकार का ग्रामीण गीत) रचा करते। जरा सोचिए यह सब इसलिए ताकि वे स्कूल की पढ़ाई के लिए आर्थिक कठिनाइयों को पारकर सकें। इस बारे में कोई जानकारी नहीं है कि ईश्वर चन्द्र को उनकी रचनाओं (गवैयों के लिए) से आर्थिक मदद मिली या नहीं। इस बिन्दु तक दोनों कवियों के बीच मौजूद समानता तलाशने का कारण, दोनों कवियों द्वारा ग़रीबी की चपेट में जिये गये जीवन को ही रेखांकित करना है।

ईश्वरचन्द्र अंग्रेजी पढ़े-लिखे न थे। फिर भी वे बड़ी दृढ़ता के साथ कलकत्ता के उस समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने में सफल रहे। उस समय जबकि अंग्रेजी प्रतिष्ठा के लिए प्रचलित मुद्रा थी। यह कैसे हो सका? पहेली और भी उलझ जाती है जब उपरोक्त वक्तव्य को प्रमाणित करते हुए शिवनाथ शास्त्री और बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे दो विशिष्ट अधिकारी विद्वान् भी उपस्थित हों। पण्डित शिवनाथ शास्त्री अपने 'रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंगसमाज' में ईश्वरचन्द्र गुप्त के बारे में लिखते हैं—

> "जहाँ तक सच्चाई का प्रश्न है, ईश्वर चन्द्र की शिक्षा नगण्य थी। एक ओर यदि उनका अंग्रेज़ी ज्ञान शून्य था तो दूसरी ओर वे जो थोड़ी-बहुत बाङ्ला सीख सके, वही उनकी धरोहर थी। लेकिन अल्प साधनों के बावजूद एक स्तरीय कवि और अच्छे लेखक के रूप में उन्होंने थोड़े ही समय में अपनी जगह बना ली।"

ईश्वरचन्द्र के बारे में अपने पूर्व विचारों (भूमिका में उद्धृत) के अतिरिक्त, बंकिम ने आगे लिखा—

> "वे अनभिज्ञ और अशिक्षित थे। अपनी छोड़, कोई दूसरी भाषा उन्हें न आती थी। अपने विचारों में वे संकीर्ण और ज्ञानहीन भी थे।" (बंगाली लिटरेचर, 1871)।

फिर भी, उसी लेख में बंकिमचन्द्र स्वीकार करते हैं कि "वे असाधारण व्यक्ति थे।" बंकिमचन्द्र ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवन-चरित्र विषयक अपनी पुस्तक में इस पर विस्तार से चर्चा करते हैं—

> "यह बहुत ही दयनीय स्थिति थी कि वे बचपन में पक्की शिक्षा न पा सके। यदि उन्हें अच्छी शिक्षा मिली होती और उनकी क्षमताओं का समुचित

उपयोग हुआ होता, तो उनकी कविता, उनकी रचनाएँ और समाज पर उनके योगदान का प्रभाव, गुणात्मक तौर पर भिन्न होता। मेरा विश्वास है कि यदि उन्हें अपने समकालीन कृष्णमोहन बनर्जी या बाद के ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह अच्छी शिक्षा मिली होती, तो बाङ्ला-साहित्य का उनके समय पर्याप्त विकास हुआ होता और बंगाल के विकास की अवधि तीस साल घट गयी होती। उनकी रचनाओं में दो चीजों की अनुपस्थिति पर मुझे गहरा दुख होता है—परिष्कृत रुचि की कमी और ऊँचे आदर्श का अभाव।"

आगे बढ़कर बंकिमचन्द्र अपने समय के सम्भावित लेखकों को चेतावनी भी देते हैं—

> "आज की पीढ़ी की अपनी युवा-प्रतिभाओं को मेरी सलाह है कि, लिखने, पढ़ने और गणित सीखने के बाद ही कागज कलम उठाओ। महान पुरुषों की जिन्दगी के अध्ययन से हम बहुत कुछ सीखते हैं। ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवन से यह सूत्र निकलता है कि बिना उचित शिक्षा के जीनियस पूरी तरह सृजनशील नहीं हो सकता।"

ये सभी सन्दर्भ, ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवन के शैक्षणिक पहलू की कमियों से जुड़े हैं। लेकिन ये कमियाँ उन्हें अपनी योग्यताओं और दृढ़ता के बल पर निश्चित दिशा की ओर बढ़ने से न रोक सकी और न ही रोक सकती थी। रास्ते में इतने गड्ढों और बहुत सारे झटकों के चलते, प्रगति की सहज गति की अवरुद्धता के बावजूद, वे एक विशिष्ट व्यक्ति बनना चाहते थे और अन्ततः, दरअसल वे बने भी। इस बीच उन्होंने कलकत्ता के 'कवियालों' से भाईचारा साधा। प्राचीन 'कवियालों' से सम्बन्ध साधने में वे अभ्यस्त थे, जैसा कि उन्होंने उन दिनों किया, जब वे अपने घर कांचरापाड़ा में रहते समय उनकी प्रस्तुतियों के लिए उन्होंने गाने लिखे। सभी उनके बुद्धि-चातुर्य और तात्काल कविता गढ़ने की क्षमता से प्रसन्न हुए। हालाँकि, उनका संस्कृत ज्ञान नगण्य था फिर भी अपनी तेज मेधा के सहयोग से सुने गये कठिन श्लोक का तत्त्व निचोड़ लेते; दोहे या बिना किसी प्रयास के उसे बाङ्ला में ढाल देते। कई प्रत्यक्ष-दर्शियों ने, जिनमे उनके मित्र और करीबी शामिल हैं, उनके कवि व्यक्तित्व के आशु काव्य-गुण की पुष्टि की है—किसी की कल्पना से एक कठिन उपलब्धि। ईश्वरचन्द्र गुप्त के बचपन के एक घनिष्ठ मित्र द्वारा प्रस्तावित इस तरह का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य, बंकिमचन्द्र द्वारा लिखित (जिसका हवाला पहले दिया जा चुका है) ईश्वरचन्द्र के जीवन चरित में, दर्ज हुआ है। तथ्य का यहाँ उल्लेख करने के सन्दर्भ में ईश्वरचन्द्र एक विलक्षण प्रतिभासम्पन्न बालक थे। ऐसा

कहा जाता है कि जब वे तीन वर्ष के बच्चे ही थे तभी उन्होंने निम्न दोहे की रचना की। उस समय के कलकत्ता के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करने के लिए जहाँ वे अपनी माँ के साथ मामा के मुकाम पर गये थे। अनुवाद में छन्दबद्ध दोहा इस प्रकार है—

'रात मे मच्छर, दिन में मक्खियाँ
इनके साथ अनवरत संघर्ष मे
काटता मैं दिन अपने, कलकत्ते मे।'

यह किस्सा बहुत बढ़ाया-चढ़ाया भी जा सकता था, लेकिन उनकी आशु कविता करने की क्षमता के प्रति लोक आस्था इतनी गहरी थी कि यह किस्सा (अतिशयोक्ति के बावजूद) चलता रहा और अब तो यह समय से चलती आ रही सूक्तियों के स्तर तक पहुँच चुका है। ईश्वरचन्द्र की तुकबन्दी करने की योग्यता समय के साथ-साथ बढ़ती चली गयी। और कलकत्ता के साथ बढ़ती घनिष्ठता के साथ, उनके मित्रों और परिचितों के बढ़ते दायरे के अनुपात में, उनकी ख्याति भी बढ़ी। परिणामस्वरूप वे पर्याप्त महत्त्व के कवि और दूसरे क्षेत्रों में प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के रूप मे स्वीकारे जाते रहे। उनके बढ़ते प्रभाव की स्थिति में उन्हें कन्धा झटककर या इच्छा के चलते नकारना नामुमकिन है। ईश्वरचन्द्र के ममेरे चाचाओं का पथुरियाघाटा के ठाकुर परिवार से सम्पर्क रहा। इस सम्पर्क के कारण गुप्त को ठाकुरों से सम्बन्ध साधने में सहायता मिली। ठाकुरों के बैठकखाने 'मजलिस' में वे अक्सर जाते, और इस तरह जोगेन्द्रमोहन ठाकुर से मिलने का उन्हें मौका मिला। जोगेन्द्रमोहन, राजा गोपीमोहन ठाकुर के नाती थे, जो पथुरियाघाटा के ठाकुर परिवार के संस्थापक, दर्पनारायण के पुत्र थे। प्रतिभासम्पन्न और स्वयं एक तरह की साहित्यिक रुचियों से जुड़े जोगेन्द्रमोहन, ईश्वरचन्द्र की काव्यगत योग्यताओं से बहुत प्रभावित हुए। और कला के समृद्ध संरक्षक की भूमिका अख्तियार करके अपने अहं की तुष्टि के लिए, उन्होंने ईश्वरचन्द्र को अपना संरक्षण प्रदान किया। कवि के जीवन-चरित लेखक बंकिमचन्द्र के अनुसार यह, धन की देवी (लक्ष्मी) और विद्या की देवी (सरस्वती) का परस्पर हितों की दृष्टि से मिलन था। बांग्ला साहित्य और देश के लिए इसके परिणाम बहुत लाभदायक सिद्ध हुए।

ईश्वरचन्द्र की सहायता से पूरे जोर-शोर के साथ जोगेन्द्रमोहन ने पत्रिका निकालने की एक योजना बनायी और शुरुआत से इस मद में खर्च करने में उन्होंने कोई कोताही न की। राजा राधाकान्त देव, चन्द्रकुमार, हरकुमार और प्रसन्नकुमार ठाकुर, जोगेन्द्रमोहन के तीन चाचाओं और रामकमल सेन (राधाकान्त के

एक सहयोगी) मरीगे, कलकत्ता के (पद और धन से सम्पन्न) अभिजात-वर्ग - के कुछ भद्र पुरुषों ने आगे बढ़कर, पैसे और अन्य साधनों की मदद से योजना को व्यावहारिक धरातल पर उतारने में मदद पहुँचायी।

इस प्रकार ईश्वरचन्द्र गुप्त के सम्पादकत्व में 'सम्वाद-प्रभाकर '(सूचना-सूर्य) साप्ताहिक का जन्म हुआ। 28 जनवरी 1931 को इसका पहला अंक प्रकाश में आया। शुरू में पत्रिका का अपना प्रेस न था, और उस समय यह चोरबागान इलाके के एक प्रेस से छपती, लेकिन टाकुर परिवार ने जल्दी ही अपने घर में ही एक प्रेस बैठा दिया और पत्रिका वहीं से छपने लगी। कुछ समय तक पत्रिका का प्रकाशन साप्ताहिक के रूप में चला, फिर यह सप्ताह में तीन दिन छपने लगी और अन्ततः उस समय के अल्प साधनों की सीमाओं के भीतर—एक पूर्णरूपेण दैनिक के रूप में—प्रतिष्ठित हो गयी।

इन विषयों पर विस्तारपूर्वक और विस्तृत रूप से बात करने का अवसर, हमें अगले अध्याय में मिलेगा। फिर भी, वहाँ पहुँचने से पहले कवि के जीवन की उस महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख जरूरी है, जिसमें उपजे त्रासद दुख की तीव्रता ने उनके व्यक्तित्व पर एक गहरा निशान ही नहीं छोड़ा बल्कि व्यावहारिक रूप से उनके जीवन की गति ही दूसरी दिशा में मोड़ दी।

पन्द्रह वर्ष की आयु में ही ईश्वरचन्द्र गुप्त का विवाह हो गया था। उस समय की और शादियों की तरह, यह भी स्पष्ट तौर पर परिवार द्वारा तय और व्यवस्थित शादी थी। प्रेम-विवाह उन दिनों दुर्लभ घटना थी। वर-वधू को मिलाने का दायित्व निन्यानवे प्रतिशत मामलों में दोनों पक्षों के अभिभावकों पर था। ईश्वरचन्द्र के पिता ने, गुप्तीपारा के वैद्य परिवार की एक कन्या अपने लड़के के लिए चुनी। पैतृक वंश-परम्परा के मानदण्डों के आधार पर इस परिवार की प्रतिष्ठा ऊँची पड़ती थी। मुख्य रूप से इसी के प्रभाव में हरिनारायण ने अपने बेटे की शादी गौरहरि मलिक की पुत्री दुर्गामणि से करना तय किया होगा। दुर्भाग्य से, दुर्गामणि कुरूपवती होने के साथ मन्द मति भी निकली। ईश्वरचन्द्र गुप्त जैसे, समय से पूर्व विकसित बालक के लिए, अविकसित बुद्धि और कुरूप कन्या के साथ यह विवाह, शुरू से लेकर अन्त तक घातक साबित हुआ। परिवार द्वारा रचायी इस शादी ने युवा वर के सपनों की आँच मद्धिम कर दी और अभागन वधू से उन्हें पूरी तरह अलग कर दिया।

ईश्वरचन्द्र अपनी पत्नी के साथ कभी नहीं रह सके। उन्होंने अकेले रहना पसन्द किया। पत्नी के सुख के सपने इस अलगाव से चकनाचूर हुए होंगे लेकिन

पति भी कम दुखी और उदास न था, जिसकी सुखद पारिवारिक जीवन बिताने की आशा, निर्मम रूप से बिखर चकनाचूर हो गयी। लेकिन ईश्वरचन्द्र, हृदयहीन व्यक्ति न थे। पत्नी के प्रति अपनी जिम्मेदारी को उन्होंने पूरी तरह निभाया। वे जब तक जीवित रहीं तब तक, ईश्वरचन्द्र गुप्त ने उसके जीवन-निर्वाह का ध्यान रखा, हालांकि दोनों अलग-अलग रहा करते थे।

मैंने कवि के जीवन की इस घटना का थोड़ा विस्तार से विवेचन एक स्पष्ट उद्देश्य से यह दिखाने के लिए किया है कि दाम्पत्य-सम्बन्ध के सन्दर्भ में उनका जीवन खाली था। इसका उनके ऊपर बहुत प्रतिकूल असर पड़ा। औरतों के प्रति, कठोर भावनाओं के साथ वे नारी-द्वेषी हो गये। उनकी कविताएँ महिला-वर्ग के विरुद्ध द्वेषपूर्ण भावनाओं से भरी पड़ी हैं।

किसी भी कवि के लिए ऐसा रूखा दृष्टिकोण अपनाना स्वस्थता का प्रतीक नहीं है, क्योंकि संसार के सभी कवि, कुछ विशिष्ट अपवादों को छोड़कर, नारियों के प्रति अपनी मृदुता के लिए जाने जाते रहे हैं। महिलाओं के प्रति आदर-भाव कवियों का खास गुण है। निश्चित रूप से बायरन भी स्त्री-द्वेषी थे पर अन्य कारणों से। औरतों के प्रति ईश्वरचन्द्र गुप्त की विरक्ति किसी ऐसे कारण से न थी, जिसने बायरन को महिलाओं के प्रति घृणा पूर्ण मुहिम चलाने को मजबूर किया। यह विरक्ति स्वभावगत न होकर विशुद्ध रूप से आकस्मिक थी।

सम्पादक के रूप में

मुख्य रूप से जोगेन्द्रमोहन और अन्य सहयोगियों (जिनके नामों की सूची पिछले अध्याय में दी जा चुकी है) की आर्थिक सहायता से, ईश्वरचन्द्र गुप्त ने, 28 जनवरी 1831 को कलकत्ता से 'सम्वाद प्रभाकर' पत्रिका की शुरुआत की। तब वे सिर्फ उन्नीस वर्ष के थे। इस मोड़ और उनके बचपन और आरम्भिक युवा वर्षों के अन्य तथ्यों के आधार पर, अल्पकाल में ही आगे बढ़कर, बड़ी उपलब्धियाँ हासिल करने की उनकी क्षमता का पता चलता है। इसलिए उन्हें एक युवा-सम्पादक कहना अतिशयोक्ति न होगी।

'सम्वाद प्रभाकर' का पहले साप्ताहिक रूप में प्रकाशन हुआ, फिर वह सप्ताह में तीन दिन प्रकाशित होने लगा, तत्पश्चात् एक स्थिति के बाद वह दैनिक के रूप में छपने लगा। पत्रिका का दैनिक संस्करण, जन-मन का शक्तिशाली प्रवक्ता बन गया और बंगाल सूबे के सामाजिक-सांस्कृतिक मामलों से जुड़े विचार के प्रतिरूपों को बनाने में, अपने समय में अखबार का कमोबेश प्रभाव बना रहा। कलकत्ता शहर की नागरिक समस्याओं की ओर इस पत्र ने उचित ध्यान दिया।

सम्पादकीय जीवन के आरम्भिक दौर में ईश्वरचन्द्र गुप्त का, प्रतिक्रियावादी और यथास्थितिवादी ताकतों की ओर पर्याप्त झुकाव था। यह कहा जा सकता है कि इस दौर में उन्होंने लगभग पूरी तौर पर धर्म-सभा के दृष्टिकोणों से तादात्म्य स्थापित कर लिया। राजा राधाकान्त देव बहादुर और रामकमल सेन आदि जैसे पुरोधा इस सभा के मार्ग-दर्शक थे, और वे सभी धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रगतिशील सुधारों के विरोधी थे। सभा के दकियानूसी विरोधी रुख ने सचेत या अर्द्ध-सचेत रूप से उदीयमान सम्पादक के दृष्टिकोण को निखारा। जिसने अपने

लड़कपन के जोश मे, एक उद्देश्य के लिए धर्मयुद्ध छेड़ने मे, अपनी क़लम को किसी भी प्रकार के प्रगतिवादी सुधार के खिलाफ अथक प्रचार का साधन बनाया।

उदाहरणार्थ, वे डिरोजियो समर्थकों और उनके उद्देश्य के कट्टर विरोधी थे। शुरू मे वे महिला-मुक्ति के किसी भी विचार की स्पष्ट खिलाफत भी करते। हालाँकि, इस सन्दर्भ मे, धर्म सभा के संरक्षक राजा राधाकान्त देव के विचार अपेक्षया उदार थे और महिलाओ के हितो के विरोध की बजाए, देहात मे महिला-शिक्षा के प्रसार में उन्होंने सहायता भी पहुँचायी। अपनी व्यंग्यात्मक कविताओं और तीखे सम्पादकीय लेखो के जरिए, ईश्वरचन्द्र गुप्त ने—तथाकथित अंग्रेज़ परस्तो के अंग्रेजी परिधानो, व्यवहारो और रीतियो की बन्दरी नकल, स्वदेशी जीवन-पद्धति के प्रति तिरस्कार और वस्त्रों, भोजन तथा जीवन की अन्य आदतों मे स्वदेशी भावना के प्रति उनकी घृणा का मजाक उड़ाते हुए—परोक्ष रूप से जेहाद छेड़ दिया।

लेकिन 'संवाद प्रभाकर' स्पष्ट रूढ़ि सम्मत स्वर के बावजूद जन मानस पर असर डालने मे सक्षम रहा। इसकी लोकप्रियता के कई कारण थे। सर्वप्रथम, दैनिक एक युवा किन्तु सक्षम सम्पादक के हाथ मे था, जिसके लिए पद्य और गद्य समान रूप से सहज थे। तीखी बुद्धिमत्ता और हास्य से सराबोर अपने प्रभावकारी व्यंग्यो के जरिए ईश्वरचन्द्र गुप्त पाठको का मनोरंजन कर सकते थे। ये लेख सीधे लोगो के दिल में उतरते, यद्यपि इन लेखो मे निहित रुचि का स्तर साफ तौर पर निचले स्तर का होता और कभी-कभी तो बिना किसी शर्म के अश्लील। अशिष्ट मजाक और बातचीत मे अभद्र उत्तर चातुर्य का कमोबेश उन दिनों चलन था। बंकिमचन्द्र के अनुसार, समाज के सम्भ्रान्त दीखने वाले सदस्य भी बड़े-बूढ़ो समेत, इसकी लपेट मे थे। इसलिए, प्रेस द्वारा इनके अपनाये जाने का पाठको ने नियम रूप से कोई कड़ा विरोध नही किया, अक्सर दबे रूप से इसे स्वीकारा ही तथा चोरी-छुपे इसका रसास्वादन करते रहे। विशेष रूप से ईश्वर गुप्त के तीखे कटाक्ष और विचलित कर देनेवाली व्यंग्योक्तियाँ (प्रायः व्यक्तियों और संस्थाओं के प्रति अपरिष्कृत संकेतों और अस्पष्ट अभद्र इशारो से भरी) पाठको द्वारा बेहद पसन्द की जाती।

दूसरे, ईश्वरचन्द्र द्वारा, अपने देशवासियो के एक तबके की गैर राष्ट्रीय पद्धतियों और व्यवहारो के विरुद्ध, गैर समझौतावादी आक्रमण को, उस समय पर्याप्त सामाजिक स्वीकृति मिली। हालांकि, इस आक्रमण की भंगिमा और दृष्टि बेहद प्रतिक्रियावादी थी। इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि वह वक्त जबकि

ईश्वरचन्द्र ने एक सम्पादक की भूमिका चुनी और उसे उसके तईं निबाहा। यह एक ऐसा दौर था जो—अपने पुराने ठिकानों से बँधी बंगाली समाज की एक अच्छी-खासी संख्या के परम्परावादी मूल्यों और पश्चिम से आ रहे नये मूल्यों के टकराव के कारण—उथल-पुथल से भरा था। यह अपरिचित और परिचित रीति-रिवाजों की ताकतों के बीच रस्साकशी थी, जिसमें उन दिनों (कलकत्ता शहर की विशेष परिस्थितियों में), प्राय: पहले पक्ष की ही विजय होती।

कलकत्ता और उसके आसपास के इलाकों में ईसाई मिशनरियों की धर्म-प्रचार सम्बन्धी अबाध गति से जारी गतिविधियों ने, पहले से ही जटिल स्थिति को और भी जटिल बना दिया। धर्म-परिवर्तन के कई मामले प्रकाश में आ चुके थे, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण मामला: हिन्दू कालेज के पुराने छात्रों, कृष्णमोहन बनर्जी और महेशचन्द्र घोष का था। कुछ और धर्म-परिवर्तन होनेवाले थे। इसके साथ ही हिन्दू कालेज के डिरोजियो समर्थकों द्वारा युवा बंगाल आन्दोलन को त्यागने के विरोध में उठी आवाज ने, परिस्थिति की जटिलता में एक और उत्तेजनापूर्ण तत्त्व का समावेश किया।

अपनी मानसिक बनावट के चलते और इन समस्याओं के सम्मुख ईश्वरचन्द्र गुप्त के लिए, बाहरी प्रभावों से समाज के ताने-बाने को सुरक्षित रखनेवालों के पक्ष में, अपनी पूरी ताक़त लगाकर एक रक्षात्मक आक्रमणकारी की भूमिका के अतिरिक्त और कोई चारा न था। वे यथास्थिति के पक्ष में थे—ऊपरी तौर पर यह एक प्रतिक्रियावादी रुख था—लेकिन वस्तुगत रूप से इसकी सम्पूर्णता में उतरने पर, इसके पक्ष में खड़े हो सकते थे। क्योंकि, इसकी शुरुआत संस्कृति और शैक्षणिक दृष्टिकोण पर नये आक्रमणकारियों के अत्याचार के विरोधस्वरूप उपजी थी (जो रक्षात्मक मनोवृत्ति की उपज है)।

लेकिन, राहत की एक स्थिति पैदा हुई। किसी भी तरह के परिवर्तन का विरोधी यह योद्धा अपने पुरातनपंथी विचारों पर बहुत दिनों तक न टिक सका। चौथे दशक के आरम्भ या उससे [illegible] पहले, सामाजिक प्रश्नों के सन्दर्भ में, गुप्त के [illegible]

[illegible] की ओर झुके। ऐसा शायद [illegible] जिनके निकट वे उन दिनों [illegible] करें। यहाँ [illegible] की तरह परि[illegible] गये। [illegible] अपना दिमाग़

रही थी। गंगाकिशोर भट्टाचार्य द्वारा 1815 ई० के लगभग प्रकाशित होनेवाली, उसके बाद ही 'बाङ्गाल गैजेट' [illegible], श्रीरामपुर मिशन के मिशनरियों द्वारा 1817 ई० के लगभग प्रकाशित 'समाचार दर्पण', लगभग 1820 ई० में राजा राममोहन राय द्वारा प्रकाशित 'संवाद कौमुदी', 1821 ई० के लगभग भवानीचरण बंद्योपाध्याय द्वारा सम्पादित और प्रकाशित 'समाचार चन्द्रिका'; तथा दो अन्य पत्रिकाएँ, 'संवाद तिमिर नाशक' और 'बंग दूत'।

इसी शृंखला में, बाद में चलकर के क्रम में 'संवाद प्रभाकर' ने प्रवेश किया। पर अपने योग्य सम्पादकीय और योजना की बदौलत इसने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ते हुए, बिना किसी सन्देह के, अपने वर्चस्व का झण्डा गाड़ दिया। यह बड़े अफसोस की बात है कि इसकी इस सफलता को विशेष आयामों सहित रेखांकित करने के लिए, इस दौर की 'संवाद प्रभाकर' की प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। पुस्तकों में उद्धृत पत्रिका के लेखों के अंशों, पैराग्राफों और कविताओं को छोड़कर, पत्रिका की यह साख सिर्फ इतिहास की बात है, जो मौखिक परम्परा द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होती हुई हम तक पहुँची है।

पत्रिका की शुरुआत बहुत शानदार तरीक़े से हुई और बड़ी तेजी से यह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी कि दुर्भाग्यवश इसके मुख्य संरक्षक योगेन्द्रमोहन, इसे पतवार-विहीन छोड़, 1832 के प्रारम्भिक दौर में चल बसे। इसके बाद यह अनाथ पत्रिका अधिक दिनों तक साँसें न ले सकी और मई 1832 के क़रीब उसने दम तोड़ दिया। वस्तुतः, तीन माह पूर्व ही, किसी झगड़े में पत्रिका के उलझने के कारण, ईश्वरचन्द्र गुप्त और हिन्दू कालेज के अधिकारियों के बीच पैदा हुई

—यद्यपि 'संवाद प्रभाकर' का स्वर और स्वभाव कुछ हद तक प्रतिक्रियावादी है फिर भी समाज के लिए एक बहुत उपयोगी भूमिका निभाने के कारण, उसे जीवित बने रहने देने के लिए हर तरह की सहायता की जरूरत है—कृष्णमोहन ने गुप्त से मैत्री स्थापित करने में देर न की। उन्होंने जैसा कहा, वैसा ही किया। अपनी गतिविधियों से उन्होंने सिद्ध किया कि वे, शक्ति बटोरने की ओर लगातार सक्रिय पत्रिका के कदमों के लिए, मुख्य ऊर्जा स्रोत हैं।

जब अपनी बारी आयी तब ईश्वरचन्द्र गुप्त भी सामाजिक विश्वासों से जुड़ी अपनी दृढ़ स्थिति से हटे। उस समय के प्रगतिशील व्यक्तियों से वे उत्तरोत्तर मुक्त भाव से मिलने लगे तथा उनके सुधी मंचों और सांस्कृतिक मंडलों से सम्बद्ध होते गये। इस प्रकार वे 'बंगभाषा प्रकाशिका सभा' [स्था० 1836] के सदस्य बने। यह संस्था गुप्त के प्रिय विषय धर्म की बजाए अधिकतर राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर बहस चलाती। दो ही वर्ष बाद एक और प्रगतिशील संस्था। [1838 में स्थापित] 'साधारण ज्ञानोपार्जिका सभा' (सामान्य ज्ञान हेतु सभा) के सदस्य बन, उन्होंने अपनी बौद्धिक गतिविधि का क्षेत्र विस्तृत किया। यह संस्था डिरोज़ियो की अकादमीय संस्था का लगभग आदि रूप थी, जो उसके संरक्षक की मृत्यु से निष्क्रिय पड़ी थी। उस समय के प्रायः सभी जाने-माने युवा सुधारवादी इसके सदस्य थे—ताराचन्द चक्रवर्ती, कृष्णमोहन बनर्जी, दक्षिणारंजन मुखर्जी, रसिककृष्ण मलिक, रामगोपाल घोष और रामतनु लाहिड़ी। संस्था का उद्देश्य बौद्धिक विचार-विमर्श का एक ऐसा माहौल तैयार करना था, जिससे लोग सामान्य और मुख्य रूप से स्थानीय हितों से सम्बन्धित मुद्दों का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। गुप्त के लिए इस संस्था से जुड़ना बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसके सदस्य होने के एक दिन पूर्व तक उन्होंने धर्म सभा की गतिविधियों का साथ दिया। संस्था के विचार और दृष्टिकोण सभा के बिलकुल विपरीत थे। इस नयी संस्था के साथ गुप्त के अलावा सभा का कोई दूसरा सदस्य न जुड़ा था। इस संस्था के साथ गुप्त के सहयोग की अपनी अलग कहानी है। वे महर्षि देवेन्द्रनाथ टागुर द्वारा 1843 में स्थापित, तत्त्वबोधिनी सभा की बैठकों में भी जाने लगे तथा उसकी बहसों में अक्सर भाग भी लेते। साथ ही वे ब्रह्म-समाज की प्रार्थना सभाओं में भी हिस्सा लेने की हद तक पहुँचे और उनके सदस्यों से वैयक्तिक भाईचारा स्थापित किया। इसी समय के आसपास वे एक-दूसरे ग्रुप की गतिविधियों में भी रुचि लेने लगे—एक अन्य युवा क्रांतिकारी किशोरीचंद मित्र द्वारा 1943 में स्थापित 'हिन्दू थियो-फिलेन्थ्रोपिक सोसायटी' के उद्देश्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह सोसायटी ब्रह्म-समाज का ही विस्तार

थी, क्योंकि इसका लक्ष्य था, 'हिंदू मूर्तिपूजा का उन्मूलन तथा ईश्वर के बारे गंभीर और उच्च विचारों का प्रचार।' उस समय के एक अति क्रांतिकारी विचार अक्षय कुमार दत्त, 'हिंदू थियो-फ़िलैन्थ्रोपिक सोसायटी' और 'तत्त्वबोधि सभा'; दोनों से ही जुड़े थे। इस सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण जानकारी यह है ईश्वरचन्द्र गुप्त ने ही अक्षयकुमार दत्त का परिचय देवेन्द्रनाथ ठाकुर से कराय जिन्होंने उनकी लेखकीय क्षमता से प्रभावित हो, तत्त्वबोधिनी सभा की पत्रिका के सम्पादकीय भार निबाहने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। बंकिमचन्द्र की तर अक्षयकुमार भी 'संवाद प्रभाकर' में यदा-कदा लिखते रहे थे।

इस प्रकार, पुराने हिन्दू-विश्वासों और रीतियों के तथाकथित परम-पाव चरित्र से सम्बन्धित कुछ विचारों को उन्होंने इस प्रक्रिया के दौरान त्यागा औ बदलते समय के नये दृष्टिकोणों के अनुरूप ढले। लम्बे समय तक ढोयी गयी हिन् समाज की 'जड़' धारणाओं को परे रख उनका प्रगति के पक्ष में सन्नद्ध होना अप्रतिम समायोजन और निश्चित रूप से स्वभाव के क्षेत्र में लचीलेपन का प्रशंस-नीय उदाहरण है।

ईश्वरचन्द्र गुप्त की इस उपलब्धि को अपनी विशेष शैली में, बंकिमचन्द्र ने कवि के जीवन पर लिखित अपनी रचना में रेखांकित किया है। उनके अनुसार गुप्त विभाजित व्यक्तित्व के अद्वितीय उदाहरण थे, जिसका एक हिस्सा 'कबियालों' और ग्राम-गायकों के साथ था, जिनके साथ अपने शुरू के दिनों की तरह वे अभी भी बिना किसी हिचक के मिलते-जुलते रहे थे; और दूसरा हिस्सा कलकत्ता के परिष्कृत शहरी लोगों के साथ था, जिनके संसर्ग में वे रात-दिन चर्चा करते तथा सामयिक ज्वलन्त प्रश्नों पर विचारों और निर्णयों का आदान-प्रदान होता। एक ओर वे अभी भी पुरानी आदत की तरह कवियों और जात्रा (लोक मंच) के लिए कविताएँ लिखते तथा दूसरी ओर समय के महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नों पर बैठकों और संगोष्ठियों को, पूरी तरह शहरी परिवेश में पोषित किसी भद्र पुरुष की तर्ज पर सम्बोधित करते। सुधार की हवा वातावरण में थी और 'गुप्तकवि', जैसा कि वे कभी-कभी प्रेम से सम्बोधित किये जाते, की प्रतिक्रिया धीमी न थी। अपने विचारों और उदार दृष्टिकोण के वृहत्तर दायरे से उन्होंने कभी-कभी अपने मित्रों और सहयोगियों तक को चकित कर दिया।

इसलिए उन्हें घुर प्रतिक्रियावादी करार देना, अन्याय है। निश्चित रूप से जीवन के अन्तिम दिनों तक प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का दबाव उन पर बना रहा। लेकिन जिस पर्यावरण में वे रहे, साँसें लीं और अपना अस्तित्व जिया, उसके अनु-

रूप प्रगतिशील विचारों में ये तत्त्व घुले और बिखरे भी। अपने स्वभाव के दबाव के फलस्वरूप, उनके लिए अपने इर्द-गिर्द के परिवर्तनों के प्रति उदासीन रह सकना सम्भव न था। इस तरह हुआ यह कि एक ही समय उनके भीतर, दृढ़ मान्यताओं और अशमनीय लचीलेपन का विलक्षण मेल मौजूद था।

इन बातों को यहीं छोड़ते हुए जहाँ हम हैं, आगे कहा जा सकता है कि 'संवाद प्रभाकर' पूरी तरह चमका, बावजूद इसके कि उसके रास्ते में रुकावटें आयीं। पत्रिका का कारोबार इतनी तेज़ी से फैला कि ईश्वरचन्द्र गुप्त 14 जून 1839 से इसे दैनिक रूप में प्रकाशित करने का साहस कर बैठे। अपने ढंग का यह बंगाल का पहला दैनिक था, शायद पूरे भारत का। 14 जून 1839 से, दैनिक के रूप में यह अपनी भूमिका पिछली शताब्दी के छठे दशक में प्रकाशन स्थगित होने तक (लगभग तीन दशकों तक) निभाता रहा।

यह वह समय था, जब ईश्वर के छोटे भाई रामचन्द्र गुप्त के नेतृत्व में दैनिक निकलता रहा, जो अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद इसके सम्पादक बने।

बंकिमचन्द्र ने निःसंकोच, 'संवाद प्रभाकर' के प्रति बाङ्ला-साहित्य के ऋण को स्वीकारा है। एक समय यह बाङ्ला-साहित्य का अभिभावक और प्रमुख देवदूत था। बाङ्ला भाषा और लेखन की शैलियों को इसने महत्त्वपूर्ण स्तर तक गढ़ा। बिना किसी सन्देह के यह कहा जा सकता कि गुप्त में पुराने फ़ैशन के एक कवि भारत-चन्द्र राय की योग्यताएँ उपस्थित थीं—एक कवि जो प्रतिभाशाली होते हुए भी, उस नये युग के स्वभाव के अनुरूप अपनी जगह नहीं बना सकता था, जिसमें गुप्त जिये; लेकिन ईश्वर गुप्त ने समय की नब्ज़ पकड़ने में देर न की। गुप्त ही वह व्यक्ति थे, जिन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक घटनाओं, दैनंदिन गतिविधियों आदि को दैनिक में विचार-विमर्श के लिए उचित सामग्री के रूप में पहली बार प्रकाशित किया। किसी दिन के अंक में 'सिख युद्ध' मुख्य मुद्दा होता तो दूसरे दिन 'पौष-पार्वण' जैसा कोई महत्त्वहीन धार्मिक उत्सव 'संवाद प्रभाकर' की पाठकीय यात्रा का मुख्य आकर्षण पड़ाव होता। तीसरे दिन, पाठकों का ध्यान खींचने के लिए, ईसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ मोटे बॉर्डर से छपतीं। 'संवाद प्रभाकर' ने यह कर दिखाया कि ये सभी विषय किसी भी पत्रिका में विवेचन की अपेक्षा रखते हैं।

इसके अतिरिक्त 'संवाद प्रभाकर' ने एक अन्य उपयोगी भूमिका अदा की। इसने अपनी छत्र-छाया में कई उदीयमान युवा लेखकों को निखारा, आगे चलकर जिनकी गणना बाङ्ला-साहित्य के सबसे अधिक जाने माने कुछ लेखकों में हुई। ईश्वरचन्द्र गुप्त के संरक्षण तले प्रभाकर के पन्नों पर रंगलाल बनर्जी, बंकिमचन्द्र चटर्जी, दीनबंधु मित्र, अक्षयकुमार दत्त, द्वारकानाथ अधिकारी और मनमोहन बसु

जैसे नवोदित साहित्यकारों का शिक्षण-कार्य बीता। कालेज के छात्रों के बीच 'कालेजीय कविता युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध पद्य के ऐतिहासिक समर में, बंकिमचन्द्र, द्वारकानाथ अधिकारी और दीनबंधु मित्र ने मुख्य रूप से भाग लिया; यह एक प्रकार की प्रतियोगिता थी और इसमें पुरस्कार बंकिम के हाथ लगा।

लेकिन यह 'कविता-युद्ध' बाद के समय में उस वक्त लड़ा गया (1854) जब 'संबाद प्रभाकर' जन-मन में एक लोकप्रिय दैनिक की जगह बना चुका था। यह स्थिति 1848 से शुरू हुए 'सबाद प्रभाकर' के जीवन के तीसरे चरण से जुड़ी है। जहाँ तक गुप्त का प्रश्न है उनके लिए दैनिक के जीवन का यह हिस्सा कई कारणों से महत्त्वपूर्ण था। सबसे पहले, इस चरण मे उनकी साहित्यिक प्रतिभा अपने उत्कर्ष पर थी; दूसरे, इसी काल मे सुधारवादी के रूप मे उनका परिवर्तन कमोबेश सम्पन्न हुआ; तीसरे, इसी दौर में उनके शिष्यो का एक दल उभरा, जिनमे से कुछ प्रयोगात्मक शिक्षण के बाद, बंगाल के बुद्धिजीवी वर्ग मे देदीप्यमान नक्षत्र साबित हुए। उदाहरण के तौर पर बाङ्ला-साहित्य के दो बड़े प्रतिनिधियों बंकिमचन्द्र और दीनबंधु ने सीधे तौर पर ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा आरम्भिक साहित्यिक दीक्षा पाई। पहले ने कहानी और निबन्ध के क्षेत्र मे और दूसरे ने नाटक के क्षेत्र में।

उपर्युक्त सभी स्थापनाओ की पुष्टि इस अवधि मे प्रकाशित 'सबाद प्रभाकर' की उपलब्ध फ़ाइलें हैं। यह कितनी करुणाजनक स्थिति है कि पहले के दो चरणो की फ़ाइलें, शोध कर्ताओं के गम्भीर प्रयत्नो के बावजूद नही मिल पायी।

उपर्युक्त तथ्यो को सत्यापित करती उस समय की पत्रिकाएँ भी मौजूद हैं। 'फ्रेंड आफ इण्डिया' और 'कलकत्ता क्रिश्चियन ऑब्ज़र्वर' जैसी पत्रिकाओं ने दकियानूसी विचारो से उदारतावाद की ओर ईश्वरचन्द्र गुप्त के झुकाव पर विशेष रूप से ध्यान दिया। 'फ्रेंड्स आफ़ इण्डिया' ने 8 नवम्बर, 1838 के अपने अंक में, स्वदेशी प्रेस के बारे में लिखा है :

> "धर्म सभा के कन्धो पर चढ़कर 'चन्द्रिका' ने लोगों का ध्यान खीचा है और अब इस सभा का भट्ठा बैठाने में इसकी भूमिका का योगदान निश्चित है। 'प्रभाकर' के सम्पादक के विरोध में एक शक्तिशाली विरोधी पक्ष खड़ा हो गया है—जो एक ओर तो उदारपंथी दल के प्रभाव द्वारा समर्थित है और दूसरी ओर वह ऐसे कविराजों (वैद्यक) जाति द्वारा सम्पादित है, जिसके पास कतिपय श्रेष्ठ बंगाली लेखक हैं।"

'कलकत्ता क्रिश्चियन आब्जर्वर' की नजरों में 'संबाद प्रभाकर', स्वदेशी प्रेस की पत्रिकाओं में, ऊँचा स्थान रखता था। इसके अनुसार यह "ध्यान खींचने-वाला एक बेहतर प्रकाशन है। इसके शुरू के अंक उत्तम संयोजन और सीधे व्यंग्यों

से भरे होते, जबकि इसके बहुत बाद के अकनैतिक लेखों और तत्त्वबोधिनी सभा के सम्बोधनों से पट गये" (13 फरवरी 1840 के 'फ्रेंड आफ इण्डिया' में उद्धृत)

पाँच वर्षों के बाद 'फ्रेंड आफ इण्डिया' की एक टिप्पणी के अनुसार पत्रिका श्रेष्ठता के स्तर पर अद्वितीय थी, लेकिन अवसर सतहीपन की शिकार। अपने एक सम्पादकीय में पत्रिका ने लिखा

"सिर्फ चार पृष्ठों का दैनिक 'सवाद प्रभाकर'। यह दैनिक सामान्य विशेषताओं के सन्दर्भ में अनोखा है। किसी समय इसके अक योग्यता और तीक्ष्णता का परिचय देते तो किसी और समय यह दैनिक पूरी तरह औसत दर्जे का साबित होता।" (1845)।

ईश्वरचन्द्र गुप्त की पत्रकारिता का तेवर 'सवाद प्रभाकर' तक ही सीमित न रहा। 'प्रभाकर' के ही छापेखाने से 20 जून 1846 को उन्होंने एक नये साप्ताहिक 'पसन्द पीडन' का प्रकाशन शुरू किया। यानी 'दुर्जन की धुलाई', है न विचित्र नाम पत्रिका का! पत्रिका के इस नाम के पीछे शायद यह तथ्य छुपा है कि यह गौरीशंकर तर्कवागीश के साथ शाब्दिक युद्ध में सम्मिलित थी। गौरीशंकर कभी 'सवाद प्रभाकर' के सम्पादक रह चुके थे और उस दौरान 'रसराज' नाम की पत्रिका के जरिए, गुप्त पर फूहड़ हमले का सचालन कर रहे थे। पाठक इस शाब्दिक युद्ध का पूरा रस लेते और अपनी अभिरुचियों के अनुसार इस या उस पक्ष में खड़े होते। ऐसा कहा जाता है कि जोड़ासाँको के द्वारकानाथ ठाकुर इस युद्ध की गतिविधियों में खासी रुचि रखते थे। वे गुप्त के पक्ष में थे क्योंकि वे उनकी कलम के कमाल के कायल थे।

अगले वर्ष, अगस्त-सितम्बर के आसपास 'पसन्द पीडन' का प्रकाशन स्थगित हो गया। यह अच्छा ही हुआ क्योंकि दोनों पक्ष एक-दूसरे को पछाड़ने की कोशिश में गाली गलौज, विवादन अफवाहों और निकृष्ट स्तर की कीचड़-उछाल हरकतों तक जा पहुँचे थे।

'पसन्द पीडन' के बाद अगस्त 1847 में गुप्त ने एक दूसरी पत्रिका 'सवाद साधुरजन' शुरू कर दी। प्रति सोमवार प्रकाशित होनेवाला यह भी एक साप्ताहिक ही था। अपने जन्म के कुछ ही समय भीतर, इस पत्र ने लोगों का ध्यान अपनी ओर विशिष्ट सामग्री—कविता, निबन्ध, ऐतिहासिक विवरण आदि—के चलते खींचा। पत्रिका को विभिन्न वर्गों के पाठकों— विद्वानों से लेकर स्कूली छात्रों और महिलाओं आदि का सरक्षकत्व प्राप्त था। यह पत्रिका दो से अधिक वर्षों तक चली। पत्रिका के अन्तिम दिन, ईश्वरचन्द्र गुप्त के एक सम्बन्धी नवकृष्णराय के नाम मात्र

सम्पादकत्व के अन्तर्गत बीते, लेकिन उन दिनों भी पत्रिका की अधिकांश सामग्री इसके पथदर्शक ईश्वरचन्द्र गुप्त की ही देन थी। अन्य लेखकों ने भी इसमें जमकर लिखा। इनमें से बंकिमचन्द्र भी थे, जिनकी दो कविताएँ इस पत्रिका में प्रकाशित और चर्चित हुईं।

यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ईश्वरगुप्त के सम्पादकत्व में 1848 से 1889 तक का तीसरा चरण, (लगभग 11 वर्ष) पत्रिका के लिए सबसे बेहतरीन रहा। इसी अवधि में पत्रिका की साख और जमी तथा इसने कलकत्ता शहर और बंगाल के विभिन्न इलाकों के पढ़े-लिखे लोगों के बीच सम्पर्क-सूत्र की भूमिका अख्तियार की। इस प्रकार, 'संवाद प्रभाकर' जन-शिक्षा का प्रभावशाली माध्यम बना। इस नजरिए से देखने पर यह स्पष्ट है कि यह दैनिक, साहित्यिक पत्रिका 'बंगदर्शन' का पूर्वगामी ही ठहरता है। इस पत्रिका ने दो दशकों बाद बंकिमचन्द्र के सम्पादकत्व में, शिक्षित समुदाय की अभिरुचि के निर्धारण और परिष्कार में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। 'संवाद प्रभाकर' दैनिक ने खूब पैसा भी कमाया। किसी समय गरीबी और अन्य मुसीबतों से लड़ते, समाज में जगह बनाते, यह मालिक एवं सम्पादक के लिए, दैनिक आय का मुख्य स्रोत बन गया। ईश्वरचन्द्र गुप्त धनी हो गये। शिवनाथ शास्त्री की पुस्तक 'रामतनु लाहिड़ी और तत्कालीन बंगसमाज' के एक विवरण से इस दैनिक की अपार लोकप्रियता का पता चलता है—

"अब तो 'संवाद प्रभाकर' सूरज की तेज किरणों की तरह चमक रहा है। बंगाल की जनता, इसमें छपी कविताएँ पढ़ने के लिए पागल हो उठी है। अखबार के निकलते ही फेरीवाले इसे ले सड़कों के नुक्कड़ों पर जम जाते, और कविता बाँचने लगते। देखते-देखते ढेरों प्रतियाँ बिक जातीं। धीरे-धीरे, ईश्वरचन्द्र गुप्त की छाप लिये बंगाल में कवियों का एक समुदाय प्रकाश में आया और इस प्रकार बाङ्ला साहित्य में एक नये युग की शुरुआत हुई।"

सन् 1886 में, बाङ्ला पत्रकारिता का इतिहास रेखांकित करते हुए 'नवजीवन' पत्रिका ने भी, प्रभाकर के इस महत्त्व को खुले मन से सराहा है। इसके अनुसार 'प्रभाकर' वह पहला दैनिक है, जिसने बंग समुदाय में, बाङ्ला दैनिक पढ़ने की इच्छा पैदा की और एक समय इसकी ख्याति बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक ही सीमित न रहकर, सुदूर उत्तर-पश्चिम तक फैल गयी। इसके अनुमानानुसार 1853 में दैनिक की पाँच हजार प्रतियाँ वितरित होती थीं। 'संवाद प्रभाकर' की माँग इस हद तक बढ़ गयी कि और अधिकाधिक कविताओं और

पाठकों की प्यास बुझाने के लिए गुप्त को पत्रिका का एक मासिक संस्करण निकालना पड़ा। और यह संस्करण दैनिक की तुलना में कहीं ज्यादा लोकप्रिय हुआ। नये मासिक संस्करण में प्रायः जिन विषयों पर लिखा जाता वे थे—अंग्रेजी और महिला-शिक्षा का प्रसार, सामाजिक सुधार, उद्योग का विकास, विकसित हो रहे नये स्नातकों की बेरोजगारी, किसानों की समस्याएँ, घोर रूढ़िवादिता के लिए धर्म सभा के नेताओं की आलोचना, ब्रह्मसमाज और तत्त्वबोधिनी सभा के नेताओं के प्रति सम्मान और सती जैसी सामाजिक रीतियों की आलोचना आदि। ये सभी सन्दर्भ और सामग्रियाँ, सम्पादक के रुख में बदलाव को दर्शाती हैं और निश्चित तौर पर उन्हें प्रगतिशील और उदार घोषित करती हैं। इस तरह के सभी साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि उनके अतीत के अस्तित्व की राख से एक नये ईश्वरचन्द्र गुप्त का जन्म हुआ—ऐसा भीतर जारी अनवरत मथन तथा सामाजिक परिवर्तनों और नये दृष्टिकोणों को अपनाने से, सम्भव हो सका।

यह सही है कि गुप्त ने अपनी कविताओं में विधवा पुनर्विवाह का मजाक उड़ाया लेकिन उनके लिखे गद्य में ऐसा कुछ नहीं है—जिससे यह साबित हो सके कि वह इसके विरुद्ध थे। ऐसा प्रतीत होता है कि विधवाओं के पुनर्विवाह सम्बन्धी, विद्यासागर के आन्दोलन के पक्ष में वे न तो खुलकर आये और न ही उन्होंने पूरी ताक़त से इसका विरोध किया। उन्होंने अपने दैनिक में दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों के विचार प्रकाशित किये। इस प्रकार दोनों पक्षों के दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति उनके अख़बार द्वारा हुई।

सिपाही विद्रोह के समय, एक अफ़वाह यह उड़ी कि ईश्वरचन्द्र गुप्त ने अंग्रेज़ों का साथ दिया। यह सच नहीं है। यह सही है कि वे देश में ब्रिटिश शासन को बने रहने देने के पक्ष में थे, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उन्होंने भयानक दमन और हत्याओं द्वारा विद्रोह के कुचले जाने का समर्थन किया। इस देश के लिए ब्रिटिश शासन की सभ्य प्रकृति में उनकी आस्था, बंगाली मध्यम-वर्ग के हिन्दू भद्रलोक की सामान्य भावनाओं से मेल खाती थी। और उस समय के लिहाज़ से यह कोई असामान्य या अनहोनी बात न थी। उल्टे, इसे देशभक्ति का चिह्न माना जाता था।

को कसौटी पर उस समय के बुर्जुआ भद्रलोक का
कारणों से आपत्तिजनक है। चूँकि इस विषय
वस्तु के बाहर बैठती है, अतः इस पर बहुत
को अलग रख रहा हूँ। इसके अतिरिक्त, बीते

वर्षों की गतिविधियों और घटनाओं को आज की मान्यताओं की कसौटी पर नहीं चढ़ाना चाहिए। यह एक ग़लत तरीका है।

ईश्वरचन्द्र गुप्त ने उस समय के बाङ्ला अखबारों में एक अनूठी शुरुआत का बीज डाला। समय-समय पर वे 'संवाद प्रभाकर' में लोगों के यात्रा-वृत्तान्त प्रकाशित करने लगे— यह एक ऐसी विशेषता थी, जिसे पाठकों ने बहुत सराहा। इस दिशा में उनकी खुद की लिखी डायरियों ने गद्य-लेखन में एक नयी शैली विकसित की। 1848 से वे समय-समय पर कलकत्ता से बाहर निश्चित कार्यक्रमों के अनुसार यात्रा पर निकल जाते। इन यात्राओं के दौरान बनारस सहित वे उत्तरी भारत के कई महत्त्वपूर्ण स्थानों पर गये। इन यात्राओं के अपने अनुभवों को उन्होंने 'भ्रमणकारी बन्धुर पत्र' में लिपिबद्ध किया और इसे अखबार में क्रमशः प्रकाशित भी किया। इन स्थानों के ऐतिहासिक और भौगोलिक विवेचन के अलावा इस अवसर का लाभ उठाते हुए उन्होंने सम्बन्धित लोगों के तरीकों, रीतियों क्षेत्रीय विशेषताओं और विश्वासों, बाजारभावों तथा अन्य मुद्दों से लोगों को परिचित कराया। इन सन्दर्भों में उनके विचार, सतही सामान्यीकरण की बजाए, व्यक्तिगत छान-बीन द्वारा निकाले गये तथ्यों पर आधारित होते। जिसे आज हम 'खोजी पत्रिकारिता' समझते हैं, उसी दिशा में किये गये ये आरम्भिक प्रयास थे।

अन्त में, निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्थानीय दैनिकों की दुनिया में 'संवाद प्रभाकर' एक ऐसी पत्रिका रही, जिसने कई दिशाओं में नयी शुरुआत की और इस देश की पत्रकारिता के भविष्य पर इसकी महत्त्वपूर्ण छाप पड़ी। मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के इस शीर्षस्थ दैनिक और इसके मुख्य नियामक ईश्वरचन्द्र गुप्त के प्रति, बाङ्ला पत्रकारिता विशेष रूप से ऋणी है।

कवि के रूप में

किसी कवि की उसकी भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में चर्चा करने पर जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं उनमें सबसे बड़ी कठिनाई है, उसकी कविताओं का अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुतिकरण। मूल कविता के सौन्दर्य या विशेषता की ओर अनुवादक इशारा भर कर सकता है। ईश्वरचन्द्र गुप्त की कविताओं के सन्दर्भ में यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है, क्योंकि उनकी कविताओं में खाँटी बंगाल की असली झंकार गूँजती है और इस देशी गंध को किसी दूसरी भाषा में उतारना आसान नहीं। जैसा कि बंकिमचन्द्र ने उनके बारे में कहा है, "ईश्वरचन्द्र गुप्त एक सच्चे बंगाली कवि हैं। वे बंगाल के गाँवों के कवि हैं।" और उनकी कविताओं की गँवई गंध को किसी दूसरी भाषा में पकड़ना बहुत कठिन है। शाब्दिक अर्थ भले ही पकड़ में आ जाएँ, लेकिन उनकी कविताओं के चारों ओर मौजूद बंगाल की खास अजनबी गंध, जिसे उनके सृजन की आत्मा माना जा सकता है—अनुवादक के बूते से बाहर की चीज है। इसलिए अनुवाद के माध्यम से कविताओं तक पहुँचने वालों के लिए असली ईश्वरचन्द्र कमोबेश कोहरे में ही हैं।

वस्तुतः इस बात को मानना ही पड़ेगा कि ईश्वरचन्द्र गुप्त स्वच्छन्दतावादी नहीं थे। रूमानी कवि की कल्पना की ऊँचाइयाँ या किसी श्रेष्ठ चित्रकार की भावनाओं की सूक्ष्म छटा उनकी पहुँच से बाहर थी। वे विचारों और भावनाओं के सांसारिक धरातल और सामान्य विषयों पर लिखनेवाले, मध्ययुगीन 'मदन (काम्य) कवियों' के ज्यादा नजदीक थे। उनकी रचनाओं में कल्पना की कमी थी।

इस बात की पुष्टि के लिए हम पुनः बंकिमचन्द्र का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने लिखा :

"वे (ईश्वरचन्द्र गुप्त) अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष करने की कला से अपरिचित

सबसे पहले उनकी हास्यपरक व्यग्यात्मक कविताओ पर ध्यान दें। आदमी की कमजोरियों और निकट से जाने गये पुरुषो और महिलाओं की स्वभावगत विशेषताओ पर व्यग्य करने मे, उन्हे बहुत आनन्द मिलता। उनके उपहासो और ठठोलियो मे द्वेष का लेशमात्र भी न था। उदाहरण के लिए, बंगाल की महिलाओं के बारे में सरसरी तौर पर वह लिखते हैं :

'सभी के माथे पे सिंदूर और गोदने की छापें हैं—
नाम हैं इन नारियो के नाशो, जाशी, क्षेमी, बामी, रामी,
श्यामी और गुलकी।'

कलकत्ता की अंग्रेज महिलाओं के सन्दर्भ मे .

'बिल्ली-सी आँखें, चाँद-सा मुखड़ा, मुंह से आती बुरी बास
झटके-सी गुजरती हैं ये चीरती हुई हमारे दिल।'

मूल मे अन्तिम पक्ति इस प्रकार है :

'बिबिजान चले जान लबेजान कोरे'

इस पक्ति मे, अन्तराल के साथ 'जान' शब्द का तीन बार प्रयोग, कविता को दुर्लभ सौन्दर्य प्रदान करता, एक विशिष्ट ध्वनि प्रभाव छोड़ता है।

अंग्रेजी तौर-तरीको की बन्दरी नकल करनेवाले बगालियो के बारे में .....

'ऐसा लगता है इनकी इच्छा है
स्वर्ग पहुँचने की
नन्दनिया भाषा उगलते,
बूट चढ़ाये और सिगार फूँकते।'

महारानी विक्टोरिया के शासन तले, आन्दोलन चला रहे आन्दोलनकारियों की उपहासपूर्ण वीरताओं के सन्दर्भ मे :

'हे हमारी माँ, हमारी सभी इच्छाओं को पूरा करनेवाली [महारानी विक्टोरिया] हम सभी पालतू मवेशियो जैसे हैं/हम नही जानते कि नत सींगो से कैसे हमला किया जाये/हम सन्तुष्ट होंगे यदि हमे सिर्फ़ चोकर [भूसी] मिल जाये / जीने के लिए और कुछ न चाहिए। यह साफ़ है कि भुवको* [भुसी] के सामने हमारा अन्त निश्चित है।'

[... ती'' ... यात्मिक प्रयोग ध्यान देने योग्य है।]

... समन्वित व्यक्ति थे कि, अपने ... उन्होंने भगवान को भी नहीं

थे, मनुष्य के हृदय की कोमल, पवित्र, उदार और जटिल भावनाओं को न तो उन्हें उस तरह की ओर न ही उन्हें वे पकड़ सकते थे। सौन्दर्य के सृजन में वे बहुत दक्ष न थे। सच बात तो यह कि जो कुछ भी मर्मस्पर्शी है वह उनकी कविता से वस्तुतः अनुपस्थित है। लेकिन उनकी जो विशेषता है, वह बेमिसाल है। अपने क्षेत्र के वे बादशाह हैं... वे बंगाली समुदाय के कवि हैं। वे कलकत्ता शहर के कवि हैं। वे बंगाल के गाँवों के कवि हैं।"

इन्हीं विचारों को आगे बढ़ाते और विकसित करते हुए बंकिमचन्द्र ने एक दूसरी जगह लिखा है :

"उनकी भाषा, बाङ्ला साहित्य में अप्रतिम है। जिस भाषा में उन्होंने अपनी कविताएँ रची हैं, वह बाङ्ला भाषा का असली प्रतिमान है। गद्य या पद्य किसी भी क्षेत्र में कोई दूसरा बंगाली साहित्यकार ऐसी सच्ची और दिल से निकली बाङ्ला, न लिख सका। यहाँ संस्कृत के प्रयोग से उपजी कृत्रिमता या आंग्लभाषा-प्रेमियों का नक़ली परिष्कार नहीं है। वे न तो पण्डितवाद का का दंभ भरते और न ही शैली की शुद्धता का। उनकी भाषा न तो झुकती है, न थककर बाढ़ती है न ही मुड़ती है—सीधी, साफ़ राह पर वह सीधे पाठक के दिल में उतरती है। ईश्वरचन्द्र गुप्त को छोड़ कोई दूसरा, बंगालियों की ऐसी सच्ची बाङ्ला न लिख सका, और न ही इस तरह की भाषा में फिर कुछ लिखे जाने की कोई उम्मीद है।"

साहित्येतिहास के प्रतिष्ठित अध्येता, ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी ने, ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवन-चरित्र पर अपनी छोटी-सी पुस्तक में लिखा है :

"ईश्वरचन्द्र गुप्त का यथोचित महत्त्व उनकी कविताओं में देखने में आता है। विभिन्न शैलियों और विभिन्न विषयों में फैली हैं उनकी रचनाएँ। अधिकतर कविताओं का विषय, स्थानिक प्रकृति का है। हालांकि ये कविताएँ उस समय के अस्थायी विषयों से सम्बन्धित हैं, फिर भी इनमें से बहुत-सी कविताएँ मौखिक सम्प्रेषण के माध्यम से हम तक पहुँची हैं। तात्पर्य यह है कि ईश्वरचन्द्र की ये सारी कविताएँ समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं और इन्हें स्वीकृति मिली है। उनके तथाकथित नाटकों में, कविताओं का अंश मुख्य है, उनमें संगीत भी शामिल है।"

इन सभी मूल्यांकनों और तथ्यों के उद्‌घाटन के बाद आइये, हम उनकी कविताओं की एक बानगी पर नज़र डालें, यह जानते हुए कि अनुवाद समर्थ सिद्ध न होगा।

सबसे पहले उनकी हास्यपरक व्यंग्यात्मक कविताओं पर ध्यान दें। आदमी की कमजोरियों और निकट से जाने गये पुरुषों और महिलाओं की स्वभावगत विशेषताओं पर व्यंग्य करने में, उन्हें बहुत आनन्द मिलता। उनके उपहासों और ठिठोलियों में द्वेष का लेशमात्र भी न था। उदाहरण के लिए, बंगाल की महिलाओं के बारे में सरसरी तौर पर वह लिखते हैं :

'सभी के माथे पे सिंदूर और गोदने की छापें हैं—
नाम हैं इन नारियों के नाकी, जाकी, क्षेमी, वामी, रामी,
श्यामी और गुनकी।'

कलकत्ता की अंग्रेज महिलाओं के सन्दर्भ में

'बिल्ली-सी आँखें, चाँद-सा मुखड़ा, मुँह से आती बुरी बास
झटके-सी गुजरती हैं ये चीरती हुई हमारे दिल।'

मूल में अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है :

'बिबिजान चले जान लबेजान कोरे'

इस पंक्ति में, अन्तराल के साथ 'जान' शब्द का तीन बार प्रयोग, कविता को दुर्लभ सौन्दर्य प्रदान करता, एक विशिष्ट ध्वनि प्रभाव छोड़ता है।

अंग्रेजी तौर-तरीकों की बन्दरी नकल करनेवाले बंगालियों के बारे में :

'ऐसा लगता है इनकी इच्छा है
स्वर्ग पहुँचने की
मन्दनियाँ भाषा उगलते,
बूट चढ़ाये और सिगार फूँकते।

महारानी विक्टोरिया के शासन तले, आन्दोलन चला रहे आन्दोलनकारियों की उपहासपूर्ण वीरताओं के सन्दर्भ में :

'हे हमारी माँ, हमारी सभी इच्छाओं को पूरा करनेवाली [महारानी विक्टोरिया] हम सभी पालतू मवेशियों जैसे हैं हम नहीं जानते कि क्या सींगों से कैसे हमला किया जाये/हम सन्तुष्ट होंगे यदि हमें सिर्फ़ कोकर [भूसी] मिल जाये / जीने के लिए और कुछ न चाहिए। यह स्पष्ट है कि भुक्को* [भूसी] के सामने हमारा अन्त निश्चित है।'

...री' और 'भूसी' शब्द के अनुप्रासिक प्रयोग ध्यान देने योग्य है।]

...कैसे ही इनने हँसमुख और प्रसन्नचित्त दर्शन दे कि, करने
...करें। उन्होंने ...दान को भी नहीं

व्यजनों से लेकर—ये कविताएँ—आम, अनानास, कटहल जैसे फलों तक फैली हैं। इस दिशा में लिखी गयी उनकी कविताओं की सख्या को देखते हुए, बिना किसी सशय के कहा जा सकता है कि वे बगाल के सबसे अधिक खाद्य-चेतना-सम्पन्न कवि थे और किसी दूसरे कवि के इस क्षेत्र मे उनके बराबर कविताएँ लिखने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ। उदाहरण के तौर पर 'बकरे के गोश्त की प्रशसा मे ·

'रस से भरा स्वादिष्ट, दिखने में सुन्दर पाठा
मैं इनके पीछे पागल हो गया हूँ,
... ...
वह जो ऐसे पशु को कहता है मूढ [बोका]
वह स्वयं ही मूढ नही, उसकी पूरी प्रजाति मूढ।'

अन्तिम दो पक्तियों में छुपे हास्य को उजागर करने के लिए, गैर बगाली पाठको के लिए यह जानकारी जरूरी है कि बगाल मे जड़बुद्धियों को 'बोका-पन्था' की उपाधि से विभूषित कर मजाक उडाया जाता है। इस 'उपाधि' निर्धारण के पीछे छिपा विचार यह है कि बकरे में बुद्धि का सर्वथा अभाव है।

अनानास पर लिखी गयी कविता का एक अश—

'हल्का हरा रग और सारे शरीर पर फैली आँखे
जिनसे बहता लाल-सुर्ख रग
ऐसे कि जैसे
युवा किशोरी पीड़ित हो कन्जेक्टिवाइटिस से[1]'

टॉप्स मछली के बारे मे वे लिखते हैं

'यदि एक बार मिले आपकी जीभ को इसका स्वाद
तो आपकी रुचि को कुछ और न भायेगा
इतनी सुन्दर है कि महज
देखने से भूल जाये सन्तानविषयक दुख
इसकी गन्ध ऐसी कि भर दे
आपकी जीभ का मन, और क्या कहना
उस खुशी का जो इसे सचमुच खाने मे है!
लाउगी से भरपूर हैं जो, उन्हें कीनियो चार खरीद चुका हूँ
और चट कर जाता हूँ सभी, जैसे ही भुनती हैं तेल मे
जो वचित है इन्हें खाने से
व्यर्थ है उनका जीवन।'

1. आँख की एक बीमारी

छांका। मनुष्य के दुःखों के प्रति पूरी तरह उदासीन और बहरे ईश्वर का वे [illegible] प्रस्तुत करते हैं। पीड़ित और यातना भुगत रही मनुष्यता की ओर से अर्जियों पर अर्जी देने और भगवान की ओर से कोई उत्तर न पाने पर इस तरह वे [illegible] करते हैं—

व्यजनों से लेकर—ये कविताएँ—आम, अनानास, कटहल जैसे फलों तक फैली हैं। इस दिशा में लिखी गयी इनकी कविताओं की सख्या को देखते हुए, बिना किसी सशय के कहा जा सकता है कि वे बगाल के सबसे अधिक खाद्य-चेतना-सम्पन्न कवि थे और किसी दूसरे कवि के इस क्षेत्र में उनके बराबर कविताएँ लिखने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ। उदाहरण के तौर पर 'बकरे के गोश्त की प्रशसा में

'रस से भरा स्वादिष्ट, दिखने में सुन्दर पाठा
मैं इनके पीछे पागल हो गया हूँ,

...

वह जो ऐसे पशु को कहता है मूढ [बोका]
वह स्वय ही मूढ नहीं, उसकी पूरी प्रजाति मूढ।'

अन्तिम दो पक्तियों में छुपे हास्य को उजागर करने के लिए, गैर बगाली पाठकों के लिए यह जानकारी जरूरी है कि बगाल में जडबुद्धियों को 'बोका-पन्था' की उपाधि से विभूषित कर मजाक उडाया जाता है। इस 'उपाधि' निर्धारण के पीछे छिपा विचार यह है कि बकरे में बुद्धि का सर्वथा अभाव है।

अनानास पर लिखी गयी कविता का एक अश—

'हल्का हरा रग और सारे शरीर पर फैली आंखें
जिनसे बहता लाल-सुर्ख रग
ऐसे कि जैसे
युवा किशोरी पीडित हो कन्जेक्टिवाइटिस से[1]

टॉप्स मछली के बारे में वे लिखते हैं

'यदि एक बार मिले आपकी जीभ को इसका स्वाद
तो आपकी रुचि को कुछ और न भायेगा
इतनी सुन्दर है कि महज
देखने से भूल जाये सन्तानविषयक दुख
इसकी गन्ध ऐसी कि भर दे
आपकी जीभ का मन, और क्या कहना
उस खुशी का जो इसे सचमुच खाने में है!
ताजगी से भरपूर है जो, उन्हें बीसियों बार खरीद चुका हूँ
और चट कर जाता हूँ सभी, जैसे ही भुनती हैं तेल में
जो वचित है इन्हें खाने से
व्यर्थ है उनका जीवन।'

1. आँख की एक बीमारी

खाने की बातें यहीं छोड़ते हुए, आइये हम ईश्वरचन्द्र गुप्त की सामान्य विषयों से जुड़ी कुछ कविताओं की ओर चलें, इन कविताओं में, जैसाकि निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है रूढ़िवादिता के पुट हैं :

> 'पहले चलती थी कुमारियाँ, अति उत्साह से धार्मिक रीतियों पर।
> लेकिन दृश्य पर 'बेथुन' के आते ही, सब कुछ हो गया खत्म
> क्या वे, अपनी पुरानी अस्मिता पा सकेंगी फिर कभी ?'

यहाँ 'बेथुन' का आशय कलकत्ता के एक मानव प्रेमी भद्र अंग्रेज श्रीमान् ड्रिंकवाटर बेथुन से है, जिन्होंने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की सहायता से, बंगाल में महिला-शिक्षा की शुरुआत की। इसी कविता में आगे चलकर :

> आज़ादी विधवा-पुनर्विवाह को जब दे दी कानून ने
> झुक गयी धरती पापों के बोझ से।

स्पष्ट रूप से यह, समाज में विधवा-पुनर्विवाह की स्थापना के लिए विद्यासागर के प्रयासों की आलोचना है। यह सच है कि प्रभाकर के पन्नों पर, जैसाकि पहले ही लिखा जा चुका है, विवाद में उलझे दोनों पक्षों के विचारों को जगह मिलती थी। विधवा-विवाह के पक्ष और विपक्ष की रायों को समान महत्त्व के साथ छापा जाता था।

'पौष-पार्बन' (चर्चित रचना) में, उत्सव के अवसर पर बंगाली परिवार की सही तस्वीर पिरोयी गयी है। अनुवाद के जरिए इसकी कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :

> 'तीन रातों तक आराम नहीं करती थीं औरतें
> भव्य ताम-झाम के साथ जलता रहता चूल्हा,
> और लगता रहा पकवानों का ढेर
> उन्हें इतना भी न मिलता समय कि सहेज सकें
> बिखरे बालों की लटें।'

नाना प्रकार की चीजें पकाने में हैं वे व्यस्त/सूप, मछली, करी, चावल और सभी कुछ/हड़बड़ी में कुछ रह जाते बिन पके/कुछ पड़े रहते चूल्हे पर देर तक/ विशिष्ट व्यंजन के रूप में पकता है मीठा चावल/'नोलन गुड़' में/यदि बहू के बनाने में रह गयी कोई मीन-मेख/शुरू हो जाते सास और ननद के ताने :

> 'अरी ओ छोकरी की बच्ची, तुम्हारे गड़बड़झाले ने कर दिया है
> इन पकवानों का कबाड़ा, जिन्हें देख ठनकता है माथा हमारा
> क्या यही वह पाक-कला है जिसे आयी हो सीखकर अपनी माँ से ?

भगवान के लिए, यदि हमें सात-जनमों तक
बिना भोजन के ही रहना पड़े,
तब भी हम न छुएँगी तुम्हारे पकवानों का एक भी कौर।
स्नेह से भरे कमल-सा बहू का चेहरा धुल जाता आँसुओं से
और भर आतीं आँखें डबडब।
ओह! कितना भारी है उसके अन्तर्मन का आक्रोश—
कह नहीं सकती स्वयं जिसे कसती है दबा अपने सीने में
एक कोशिश के साथ।

हिन्दू परिवारों में सास और बहू के बीच चलनेवाली पारम्परिक कटुता—जिसमें ननद अक्सर अपनी माँ के पक्ष में कमर कसती है उसका यह यथार्थवादी चित्रण है। लेकिन, बंगाली हिन्दू परिवारों की विशेषता सिर्फ इतनी ही नहीं है इसका एक स्नेहिल मधुर पक्ष भी है जो उपर्युक्त तानों के कष्टप्रद माहौल को सहनीय बनाता रहता है।

उपर्युक्त कविता 'पौष-पार्वण' का दूसरा अंश

'चल रही है तैयारी, आलू-दूध, खीर और गाढ़े दूध से बनाने की, तरह-तरह की पिठेपुली (त्योहारों के अवसर पर बनाये जानेवाला एक विशेष प्रकार का व्यंजन) निमन्त्रण भेजा जाता है पड़ोस में और लगा है रिश्तेदारों का मेला।
भैयाचार की कितनी जबरदस्त पकड़ है इस देश के लोगों पर!
रात घिरते ही पत्नी परसाती है, शयन-कक्ष में सोये पति के लिए
जिसका स्वागत, इन पकवानों से करने की उसे तीव्र इच्छा है
चाह भरी आशा के साथ, वह उसके आसन (पीढ़ा) के क़रीब आती है,
फुसलाती है उसे धारदार तरीक़ों से 'इसे या उसे न खाने से पहले
उतार लो मेरा सिर'
और इन्हीं शब्दों के साथ परोसती है उसकी थाल में ढेर सारा 'पिठा'।
यदि वह स्वीकृत नहीं करता तो फेरती है वह उसकी ओर पीठ,
ओह, पति के स्नेहिल स्पर्शों के लिए कितनी बड़ी हुज्जत।
अरुचिकर भावों से भरा चेहरा लिये।'
पति की पुचकार की आशा में वह बनाती है 'चुकुली'।'

याने की बातें यहीं छोड़ते हुए, आइये हम ईश्व
जुड़ी कुछ कविताओं की ओर चलें, इन कविता
स्पष्ट है रूढ़िवादिता के पुट हैं :

'पहले चलती थी कुमारियाँ, अति उ
लेकिन दृश्य पर 'बेथुन' के आते ही, र
गया वे, अपनी पुरानी अस्मिता या स

यहाँ 'बेथुन' का आशय कलकत्ता के एक मानव प्रे
बेथुन से है, जिन्होंने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की सहा
की शुरुआत की। इसी कविता में आगे चलकर

आज़ादी विधवा-पुनर्विवाह की जब दे दं
झुक गयी धरती पापों के बोझ से।

स्पष्ट रूप से यह, समाज में विधवा-पुनर्विवाह की स्थ
प्रयासों की आलोचना है। यह सच है कि प्रभाकर के
लिया जा चुका है, विवाद में उससे दोनों पक्षों के वि
विधवा-विवाह के पक्ष और विपक्ष की रायों को समान
था।

'पौष-पार्बन' (चर्चित रचना) में, उत्सव के
सही तस्वीर पिरोयी गयी है। अ
उद्धृत किया जा रहा है :

'तीन रातों तक
भव्य ताम-

उन्हें

नाना प्रकार
सभी कुछ/हर
विशिष्ट व्यज
बनाने में रह
'अरी
इन

आनन्द के लिए गुप्त व्यंग्यात्मक और विडम्बनात्मक कविताओं में विचरते थे। समय की लोकप्रिय रुचियों के अनुरूप, उन कविताओं की अभिव्यक्तियाँ ऐसे स्पष्ट विन्यासों और शब्दों में ढली होतीं, जो उनके समय की लोकप्रिय रुचियों से मेल खातीं। लेकिन उनकी असली प्रतिभा, उनकी हास्य-कविताओं की बजाए विपरीत प्रकृति की कविताओं में व्यक्त होती है। इन्हीं कविताओं में सिद्ध होता है कि ईश्वरचन्द्र महात्मा और धार्मिक विषयों को समर्पित चिन्तनशील मनुष्य होने के बावजूद बहुत उदाम और अकेले व्यक्ति थे। इस दृष्टिकोण की विवेचना के लिए यहाँ ऐसी कुछ कविताओं के उदाहरण प्रस्तुत हैं 'सब आछे फाँक' (खाली है सब कुछ) कविता का पहला पद्यांश :

'सब कुछ खाली है इस ब्रह्माण्ड में, ओह, सभी कुछ खाली है।
क्यों अपनी अमीरी की डींग हाँकते हो ओह, क्यों हाँकते हो?
निःसन्देह आकर्षक है, तुम्हारी काया—लेकिन मृत्यु के साथ,
जलकर यह हो जायेगी राख।'

प्रार्थना (निर्गुण ईश्वर के प्रति) की कुछ पंक्तियाँ

'मृत्यु के समय यदि भूल जाऊँ तुम्हारे पवित्र चरणों को
हे ईश्वर! मुझ पर दया करो और उठाओ अपना चेहरा
ताकि देख सको मुझे।
हे ईश्वर! यद्यपि अगोचर हो, फिर भी व्यापे हो कण-कण में
और मैं ईश्वरचन्द्र गुप्त, तुम्हारा एक पुत्र
ओह, अपने को छुपा, इस असहाय गुप्त बालक से शरारत न करो
और अपने गुप्त रूप को उजागर कर तोड़ो अपने चारों ओर बुने
रहस्यावरण को।'

'गुप्त' शब्द का प्रयोग—जिसके दो अर्थ हैं—रेखांकित किये जाने योग्य है। इसका एक अर्थ है 'छुपा हुआ' तथा दूसरा अर्थ ईश्वरचन्द्र गुप्त के नाम से जुड़ा है। ईश्वर गुप्त अपनी रचनाओं में शब्दों के साथ अक्सर कुछ ज्यादा ही खिलवाड़ कर जाते थे।

अच्छे और बुरे मनुष्य के बीच भेद करती उनकी एक कविता है, 'दुस्म ओ निदुक' (दुश्मन और निंदक)—

'जो सज्जन हैं वे जाने जाते हैं अपने ईमानदार चरित्र की बदौलत।
दूसरों की भलाई के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मालूम।
यदि लकड़हारा चन्दन के पेड़ पर भी करता है प्रहार
मिलती है उसे खुशबू चन्दन के पेड़ से।

यहाँ 'पुकुली' (एक तरह का मीठा पकवान) शब्द में निहित श्लेष का प्रयोग विचारणीय है। पहले सन्दर्भ में इसका अर्थ एक तरह के व्यंजन से तथा दूसरे सन्दर्भ में पुचकार, चुम्बन अथवा आलिंगन है।

इस सन्दर्भ में ईश्वरचन्द्र गुप्त के एक प्रसिद्ध दोहे का स्मरण हो आता है। जो आज, मुकुन्दराम या भारतचन्द्र की रचनाओं की तरह, अर्थगर्भित लोकोक्ति के स्तर तक पहुँच गया है। दो पंक्तियाँ, हालाँकि सफल साहित्यिक सांकेतिकता के लिहाज से अपरिष्कृत है फिर भी अभिव्यक्ति के मामले में अद्वितीय हैं—

'सज्जाय मार्जार प्राय
छाड़पोका ओठे गाय'

शरीर पर विचरते हैं खटमल ऐसे मानो बिस्तर पर पत्नी—'सज्जाय' और 'मार्जार' शब्दों का प्रयोग विचारणीय है। ईश्वरचन्द्र गुप्त का अनुप्रास और अलकारों की ओर बहुत अधिक झुकाव था, और जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस दिशा में वे कभी-कभी जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ जाते। लेकिन, यहाँ पर अलकारिक प्रयोग निसदेह समुचित और कलात्मक है।

लेकिन यह सोच लेना कि ईश्वरचन्द्र गुप्त कवि की हैसियत से सिर्फ हल्के सन्दर्भों तक सीमित रहकर आनन्द लेते रहे—गलत होगा। यदि एक ओर वे हल्के और हास्य स्तर की रचनाओं को गढ़ने की क्षमता रखते थे और मौके-बेमौके, अभद्रता और अश्लीलता का सहारा लेने से भी न चूकते, तो दूसरी ओर कविता की विषयवस्तु की माँग के अनुरूप उनका स्वर बेहद गम्भीर भी हो सकता था। हल्की रचना से गम्भीर रचना की ओर तथा गम्भीरता से पुन: सस्तेपन की ओर लौटना ईश्वरचन्द्र के लिए ऐसी सरल प्रक्रिया थी जो उनकी प्रकृति के लचीलेपन और स्वभाव के समायोजन पक्ष को दर्शाती है। इसी क्षमता की बदौलत वे मुदित थे, गम्भीर थे। एक व्यक्तित्व जो ईश्वर से डरता है, एक हृदय जो देशभक्ति से भरा है। ईश्वर और मातृभूमि की प्रशसा में लिखी गयी उनकी कविताएँ महज उद्देश्य की संजीदगी को ही नहीं व्यक्त करती वरन् उच्चकोटि की भावनाएँ भी यहाँ रची-बसी है। मातृभूमि प्रेम की ही तरह वे मातृभाषा प्रेम पर भी व्यापक जोर देते रहे। उनके मूल्यों के पलड़े पर दोनों प्रकार के प्रेम समान थे। व्यावहारिक रूप से इनमे अदला-बदली सम्भव थी।

ईश्वरचन्द्र गुप्त की गंभीर कविताएँ शायद सख्या के लिहाज से सस्ते स्तर की रचनाओं से अधिक बैठती हैं। और, बकिमचन्द्र की यह जानी मानी राय है कि ईश्वरचन्द्र की ऐसी रचनाएँ हल्के स्तर की रचनाओं से कहीं श्रेष्ठ हैं। शुद्ध

आनन्द के लिए गुप्त व्यंग्यात्मक और विडम्बनात्मक कविताओं में विचरते थे। समय की लोकप्रिय रुचियों के अनुरूप, इन कविताओं की अभिव्यक्तियाँ ऐसे स्पष्ट विन्यासों और शब्दों में ढली होतीं, जो उनके समय की लोकप्रिय रुचियों से मेल खातीं। लेकिन उनकी असली प्रतिभा, उनकी हास्य-कविताओं की बजाए विपरीत प्रकृति की कविताओं में व्यक्त होती है। इन्हीं कविताओं से सिद्ध होता है कि ईश्वरचन्द्र महात्मा और धार्मिक विषयों को समर्पित चिन्तनशील मनुष्य होने के बावजूद बहुत उदास और अकेले व्यक्ति थे। इस दृष्टिकोण की विवेचना के लिए यहाँ ऐसी कुछ कविताओं के उदाहरण प्रस्तुत हैं 'सब आछे फाँक' (खाली है सब कुछ) कविता का पहला पद्यांश :

'सब कुछ खाली है इस ब्रह्माण्ड में, ओह, सभी कुछ खाली है।
क्यों अपनी अमीरी की डींग हाँकते हो ओह, क्यों हाँकते हो ?
नि:सन्देह आकर्षक है, तुम्हारी काया—लेकिन मृत्यु के साथ,
जलकर यह हो जायेगी राख।'

प्रार्थना (निर्गुण ईश्वर के प्रति) की कुछ पंक्तियाँ

'मृत्यु के समय यदि भूल जाऊँ तुम्हारे पवित्र चरणों को
हे ईश्वर! मुझ पर दया करो और उठाओ अपना चेहरा
ताकि देख सकूँ मुझे।
हे ईश्वर! यद्यपि अगोचर हो, फिर भी व्यापे हो कण-कण में
और मैं ईश्वरचन्द्र गुप्त, तुम्हारा एक पुत्र
ओह, अपने को छुपा, इस असहाय गुप्त बालक से शरारत न करो
और अपने गुप्त रूप को उजागर कर तोड़ो अपने चारों ओर बुने
रहस्यावरण को।'

'गुप्त' शब्द का प्रयोग—जिसके दो अर्थ हैं—रेखांकित किये जाने योग्य है। इसका एक अर्थ है 'छुपा हुआ' तथा दूसरा अर्थ ईश्वरचन्द्र गुप्त के नाम से जुड़ा है। ईश्वर गुप्त अपनी रचनाओं में शब्दों के साथ अक्सर कुछ ज्यादा ही खिलवाड़ कर जाते थे।

अच्छे और बुरे मनुष्य के बीच भेद करती उनकी एक कविता है, 'सुजन ओ निंदुक' (दुश्मन और निंदक)—

'जो सज्जन हैं वे जाने जाते हैं अपने ईमानदार चरित्र की बदौलत।
दूसरों की भलाई के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मालूम।
यदि लकड़हारा चन्दन के पेड़ पर भी करता है प्रहार
तो मिलती है उसे खुशबू चन्दन के पेड़ से।

सज्जन दूसरों की कमियों को छुपा सिर्फ अच्छाइयों का
करते हैं बखान।
लेकिन खल दूसरों की बुराइयों का करते हैं खुलासा
फेरते हुए उनकी अच्छाइयों की ओर पीठ।'

और अब ईश्वरचन्द्र गुप्त की देशभक्ति पूर्ण कविताओं के बारे में। चलते-चलते, यहाँ, इस बात का भी हवाला दे दिया जाये कि ईश्वरचन्द्र गुप्त के काल में, अर्जित विशेषता के रूप में देशभक्ति पूर्ण भावना का पाया जाना, दुर्लभ संयोग था। तब बंगाल के शिक्षित तबके के दिमाग में, देशभक्ति के बीज का अंकुरण, पश्चिम के सम्पर्क के जरिए अभी आरम्भ ही हुआ था। यह मुख्य रूप से, अंधविश्वासों से मुक्ति, की उपज था। इस पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में, बाङ्ला कविता में इस नयी धारा की शुरूआत का श्रेय ईश्वरचन्द्र गुप्त और रंगलाल बनर्जी को जाता है। आगे चलकर इसने—माइकेल मधुसूदन दत्त, हेमचन्द्र बनर्जी और नवीनचन्द्र सेन की कविताओं और बंकिमचन्द्र के गद्य-लेखन में—शक्तिशाली स्वर ग्रहण किया। फिर भी, निःसन्देह रूप से इस दिशा में, आरम्भिक प्रयास ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा किया गया, जो रंगलाल से उम्र के लिहाज से पन्द्रह वर्ष बड़े थे। अपने देशवासियों में मातृभूमि के प्रति आदर भाव को अलख जगाने हेतु, रंगलाल ने भी देश भक्तिपूर्ण कविताएँ लिखीं। लेकिन, समर्पित रूप से इसके पूर्व सधानी, ईश्वरचन्द्र गुप्त ही थे। मातृभूमि (स्वदेश) की प्रशंसा में वे लिखते हैं :

'अरे प्राणियो, क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी जन्मभूमि
माँ है तुम्हारी ?
एक माँ जिसने अपनी छाती से लगा थपकी दे तुम्हें सुलाया है
किसी ने ऐसा भयानक दृश्य कहीं और देखा है कि माँ के आलिंगन में
सुखद सुरक्षा जीते बच्चे भूल गये हों अपनी ही माँ को ?
ओह ! श्रद्धा की सघन भावना से उसे पूजो जिसकी ताकत से तुम
और हम मजबूत बने हैं, जिसकी अनुकम्पा से जीते हैं हम,
विचरते हैं हम और बना है अस्तित्व हमारा।'

लेकिन इस कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ हैं :

'भ्रातृ भाव से भरे मस्तिष्क और आँखों में प्यार
भर, देखो अपने देशवासियों की ओर।
विदेशी भगवानों को त्याग भरपूर चाह से
अपनी मिट्टी के देवों की करो चाहना।'

ये पंक्तियाँ अब बंगला सूक्ति-भण्डार, प्रवाद-प्रवचन [जैसा कि इन्हें बाङ्ला में माना जाता है] की स्थायी सम्पत्ति बन चुकी है।

कवि मातृभाषा की महानता के विषय में आगे कहता है

'ओ बच्चे ! माँ की गोद में आराम के साथ सिर छुपाते हो, खुशी से हारते हैं
जो अस्पष्ट शब्द वे शब्द जिनसे बहना है फूलों का मधुर रस तुम्हारे होठों से
हर ध्वनि के साथ तुम्हारी मातृभाषा है।
बढ़ने पर तृप्त हृदय में जिस भाषा में करते हो ईश्वर का गुणगान—
वह मातृभाषा है जो एक माँ की तरह पूरी करती है तुम्हारी सभी आशाएँ।
इसलिए, करो सेवा इस भाषा की खुशी के साथ।'

इस प्रकार की भावनाएँ स्वदेश [जिसका पहले जिक्र किया जा चुका है] कविता में भी मिलती हैं जैसाकि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है—

'अपनी महान रचनाओं द्वारा निर्देशित श्रेष्ठ मार्ग का
अनुसरण करो और मुदित हृदय से उपजाओ प्रेम !
पहुँचाओ और ऊपर मातृभाषा का वैभव,
पूरी करो इसकी आशाएँ और करो ज्ञान का प्रसार।'

सचमुच बेहद उच्च विचार। जागती हुई भावनाएँ आत्मा को ऊँचाई पर पहुँचाती हुई। और ईश्वरचन्द्र गुप्त के व्यक्तित्व का यही वह आयाम है, जिसका गहरा असर उनकी आगामी पीढ़ियों के दिमाग पर पड़ना, तय था। उनकी हल्की रचनाओं को भुला जा सकता है लेकिन इन उच्च भावनाओं के प्रवाह को नहीं। और ठीक इसी कारण ईश्वर गुप्त के जीवन के तथ्यों और रचनाओं के संग्रहकर्ता [और सम्पादक] डॉ भवतोष दत्त ने, इनकी जबरदस्त प्रशंसा की है। वे लिखते हैं : "नाना विषयों से सम्बन्धित निश्चित आदर्शों में ईश्वरचन्द्र गुप्त की आस्था है। देश, देशवासियों और देश-धर्म के प्रति उनका गहरा लगाव है। इसके अतिरिक्त मातृभाषा ने उनकी रुचि को अपनी ओर खींचा।"

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, ईश्वरचन्द्र गुप्त तत्त्वबोधिनी सभा के आदर्शों के प्रशंसक थे। वस्तुतः वे इसकी बहुत-सी बैठकों में मौजूद रहे तथा कभी-कभी विचार-विमर्श में भी हिस्सेदारी की। वे सभा तथा इसके संस्थापक महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से इस कदर जुड़े थे कि सभा के तनिक भी अनादर से, उनको बहुत ठेस पहुँचती। सभा के प्रति उनकी इस गहरी श्रद्धा का कारण सभा के आदर्शों के प्रति ... था। उनके इस रुख से, बुद्धि की महानता ही नहीं झलकती

परन्तु बिना किसी सन्देह के यह बात भी स्पष्ट होती है कि ईश्वरचन्द्र गुप्त दिल से कतई रूढ़िवादी नहीं थे। वे समय की अच्छाइयों से प्रभावित होनेवाले, एक सच्ची तार्किक सोच के मालिक थे। इन अच्छी भावनाओं को उन्होंने कविता के रूप में भी ढाला। यथा—

'रीतियों और तौर-तरीकों में, जाति के नियमों और
कर्मकाण्डों में सत्य मुश्किल से ही होता है
यदि कोई सत्य-मार्ग पर चलता है तो हवा में कपूर हो जाते हैं
ये हैं दिखावे और समाज उस पर हँसता है।
होता हूँ जब समाज के बीच, हो जाता हूँ दूर सभा [सम्पर्क] से,
पिलाती है जो सत्य की घुट्टी और मुझे इसके बिना ही काम चलाना है।
उजाले और अँधेरे की तरह हैं, प्रचलित रीतियाँ और सत्य
कैसे भला वे हो सकती हैं, एक साथ ?'

[संवाद प्रभाकर, 27 जून 1848]

प्रस्तुत है, ईश्वरचन्द्र गुप्त की कुछ आध्यात्मिक कविताओं के उदाहरण :
'सभी को तलाश है मनुष्य की लेकिन 'मनुष्य' शब्द महज एक उच्चारण है।
नतीजतन मुझे हर मनुष्य में नजर आता है सिर्फ शव।
जब कि सभी आदमी के पीछे ही पड़े हैं।'

[मनेर मानुष]

और आगे भी वे कहते हैं :
'अन्ततः कोई-न-कोई होगा।
सुन्दर शरीर जो तुमने पाया है
वह कुछ और नहीं, भूतों का बसेरा है।
सभी आशाएँ व्यर्थ जायेंगी, मिट्टी में मिल जायेगा यह शरीर।
फिर क्यों, जो कुछ भी नहीं है उसके लिए पालते हो भ्रम ?
अन्ततः कोई न होगा।

[मनेर मानुष]

एक अन्य आध्यात्मिक छन्द :
'हे ईश्वर ! मैं तुम्हें अपने भीतर पाता हूँ
फिर क्यों ऐसा महसूस होता है कि तुम मुझसे अलग हो ?
मैंने अपने समय का दुरुपयोग किया, निरुद्देश्य भटका किया,
पश्चात्ताप किया तुम पर व्यर्थ ही।

ओह ! अब मैं अनुभव करता हूँ कि तुम मुझमें हो।'

... .

'मैं उस व्यक्ति की तरह हूँ जो नहीं देख पाता
अपने ही गले में पड़ा हार और जो भटकता है दर-ब-दर उसकी खोज में
अपने ही केसर की मस्त गन्ध से मद उस कस्तूरी मृग-सा जो
आतंकित भटकता है इधर से उधर और जिसे नहीं है ज्ञान गन्ध के स्रोत का
सो मैं भी उलझा रहा भ्रमों के जाल में
और समय बीतता गया यूँ ही निरर्थक।
दो आँखों के बावजूद मैं पूरी तरह अन्धा रहा
और जीवन का असली गन्ध मुझसे कोसों दूर रहा।
अत: मैं हूँ उस आदमी की तरह, जो वैभव से परिपूर्ण घर के बीच
अकिंचन है, क्योंकि विधि-सम्मत नहीं है उसकी सम्पत्ति
यह, कमल के चित्र के चारों ओर मंडराते हुए भौंरे के भ्रम का
पालना है जबकि, खिलते हैं पूरी तरह फूले असली कमल तालाब में।

रचनाएँ

ईश्वरचन्द्र गुप्त अपने जीवन-काल में तीन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित न कर सके। लेकिन, उनकी मृत्यु [जनवरी, 1859] के बाद उनके छोटे भाई रामचन्द्र गुप्त और उनके कुछ प्रशंसकों ने समय-समय पर 'सम्वाद प्रभाकर', 'सम्वाद साधुरंजन' और अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित बहुत सारी सामग्री को संग्रहीत एवं सम्पादित कर पुस्तकाकार रूप दिया। इन संग्रहीत एवं सम्पादित रचनाओं को मिलाकर सभी प्रकाशनों की संख्या 12 या 13 बैठती है। आइए, एक-एक कर इन पुस्तकों का विवरण देखें।

1 कालीकीर्तन [पृ० संख्या 33] यह स्वर्गीय भक्त कवि, कविरंजन रामप्रसाद सेन द्वारा रचित, एक पुस्तिका है जिसे सम्पादित कर, ईश्वरचन्द्र गुप्त ने सन् 1833 में प्रकाशित किया। यह देवी काली की प्रशंसा में अर्पित [काव्य] प्रसाद है। ईश्वर गुप्त लम्बे अर्से से, पुराने कवियों और तुकबंदी कविताओं और गीतों को एकत्र करने में लगे हुए थे। रामप्रसाद सेन की रचनाओं के संरक्षण के प्रति उनका विशेष आग्रह था। उन्हें यह आभास हो गया था कि यदि समय रहते इन रचनाओं को इकट्ठा और संकलित न किया गया तो ये समय की धारा में खो जायेंगी और बाङ्ला साहित्य की अपूरणीय क्षति होगी। ईश्वर गुप्त की योजना कवि रामप्रसाद की अन्य रचनाओं को प्रकाशित करने की भी थी और इस सिलसिले में वे सामग्री एकत्र भी कर रहे थे लेकिन किन्हीं न किन्हीं कारणों से वे इस योजना को, अमली जामा न पहना सके।

2. कविवर भारतचन्द्र राय गुणाकरेर जीवन वृत्तान्त [स्वर्गीय कवि भारत-चन्द्र गुणाकर का जीवन-चरित्र]। [पृष्ठ संख्या 61] 1855; ईश्वरचन्द्र भारत-चन्द्र की कविताओं के भारी प्रशंसक थे और इस समय वे स्वयं बाङ्ला कविता के

उस परम्परा और शैली से जुड़े थे जिसकी शुरुआत कवि भारतचन्द्र ने की। इसलिए, अट्ठारहवीं शताब्दी के बाङ्ला काव्य-साहित्य के इस छन्दशास्त्रीय करिश्मे की कुछ श्रेष्ठ रचनाओं के सकलन को, ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा कवि के प्रति अपने आदर की अभिव्यक्ति का आवश्यक एव उचित रूप मानना, ठीक ही था। उन्होने इस पुस्तक की भूमिका मे लिखा कि यहाँ सकलित कुछ रचनाएँ पहली बार प्रकाशित हो रही हैं और ये स्पष्ट करती हैं कि भारतचन्द्र सस्कृत, बाङ्ला, हिन्दी और फारसी भाषा के प्रयोग मे सिद्धहस्त थे। इसी सस्करण मे अनादिमगल और विद्यासुन्दर की कुछ कविताएँ—जो गहरे अर्थ के साथ भारतचन्द्र की साहित्यिक प्रतिभा और जटिल विचारो मे विचरने की उनकी क्षमता उद्‌घाटित करती हैं—उचित टीकाओ के साथ छपी।

'लिटरेरी गज़ट' सहित उस समय की पत्रिकाओं ने इस पुस्तक पर अच्छी समीक्षाएँ प्रकाशित की।

3 **प्रबोध प्रभाकर** (पहला भाग, 1857, पृष्ठ सख्या 122, वर्दवान) एक अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान पण्डित पद्‌मलोचन न्यायरत्न भट्टाचार्य की प्रेरणा के अनुरूप लिखी गयी इस पुस्तक मे, पिता और पुत्र के बीच प्रश्न-उत्तर शैली मे, नैतिकता और अन्यान्य सम्बद्ध विषयो पर लेख शामिल हैं।

इस पुस्तक का पहला भाग ही प्रकाशित हो सका। जहाँ तक जानकारी है, इसके दूसरे भाग का संकलन न हो पाया।

ईश्वरचन्द्र गुप्त की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई रामचन्द्र गुप्त ने निम्न रचनाएँ प्रकाशित की:

4. हित-प्रभाकर, (मार्च, 1860), इस पुस्तक मे हितोपदेश की कहानियाँ —गद्य और पद्य—दोनो मे ही संकलित थी।

5. कवितावली सार-सग्रह, जिसके पहले तीन भाग सन् 1862 मे छपे, चौथा 1869 मे, पाँचवाँ-छठा और सातवाँ भाग 1863 मे और आठवाँ भाग 1874 मे प्रकाशित हुआ।

'संवाद प्रभाकर' और स्वय कवि द्वारा सम्पादित अन्य पत्रिकाओ मे समय-समय पर प्रकाशित होनेवाली श्रेष्ठ कविताएँ; इस संकलन के आठो भागो मे मौजूद हैं।

इस सन्दर्भ मे, इस बात का भी जिक्र कर दिया जाय कि रामचन्द्र गुप्त द्वारा [illegible] कालान्तर मे ईश्वरचन्द्र गुप्त की कविताओ के तीन और [illegible] हुए। ये हैं:

6. कविता-संग्रह, 1885 (पृ० सं०-348), बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा संपादित एवं गोपालचन्द्र मुखर्जी द्वारा प्रकाशित। इस संस्करण में, भूमिका के बतौर बंकिमचन्द्र ने ईश्वरचन्द्र के बारे में अपना प्रसिद्ध लेख 'ईश्वरचन्द्र गुप्तेर जीवन-चरित्र ओ कविता' [ईश्वरचन्द्र गुप्त का जीवन और कविता] शामिल किया।

7. कविता-संग्रह, [दूसरा भाग, 1886] गोपालचन्द्र मुखर्जी द्वारा सम्पादित।

8 कविवर ईश्वरचन्द्र गुप्तेर ग्रंथावली 1900, [पृ० संख्या-170], कालीप्रसन्न विद्यारत्न द्वारा सम्पादित और बसुमती आफिस द्वारा दो भागों में प्रकाशित पहला भाग [पृ० 137], सन् 1901 में तथा दूसरा भाग [पृ० 70], सन् 1913 में छपा। इस ग्रन्थावली में भी बंकिमचन्द्र का प्रसिद्ध लेख [जिसका ऊपर विवरण दिया गया है] छपा।

9. बोधेन्द्र विकास, 1863, [पृ० संख्या-140], यह कृति कृष्ण मिश्र के प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' का अनुवाद है, जिसे गद्य और पद्य दोनों में ही रचा गया है। ऐसा लगता है कि ईश्वरचन्द्र गुप्त ने मूल संस्कृत से ही अनुवाद किया। एक स्वतन्त्र अनुवाद होने के नाते यहाँ कुछ ऐसी चीजें थीं जो मूल में नहीं हैं। नाटक के सिर्फ तीन अंक ही छप सके क्योंकि अतिरिक्त सामग्री और कवि द्वारा स्वतन्त्र विषय विस्तार के कारण, पुस्तक का आकार बहुत बढ़ गया। शेष तीन अंकों को दूसरे भाग के रूप में छपना था। [नाटक छः अंकों में था]। लेकिन, यह योजना कभी कार्यान्वित न हो सकी।

'बोधेन्द्र विकास' बहुत लोकप्रिय हुई। पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने से पूर्व 1857 में यह नाटक 'संवाद प्रभाकर' में शृंखलाबद्ध किया गया। अपने जीवन-काल में ही प्रकाशित करने के इरादे से, कवि ने पाण्डुलिपि चरण में इस नाटक को कई बार सुधारा, लेकिन इसका प्रकाशन न हो सका और इसका दायित्व छः वर्ष बाद उनके छोटे भाई को उठाना पड़ा। सौन्दर्यशास्त्रीय मानदण्डों के ख्याल से यह एक अद्वितीय रचना थी, जिसमें बाङला काव्य-साहित्य की दुनिया में अपनी जगह बनाने की योग्यताएँ मौजूद थीं। अपने संस्मरण में ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस कृति के कुछ बेहद रोचक और मनोरंजक अंशों का प्रशंसात्मक स्वर में उल्लेख किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी इस रचना से परिचित थे परन्तु भूल वश वे इसे अपने बड़े भाई की कृति समझ बैठे।

10. ग्रन्थावली [दो भागों में, सन् 1901, पहला भाग, पृ० 336; दूसरा भाग, पृ० 376।] कवि के नाती मणीन्द्र कृष्ण गुप्त द्वारा सम्पादित और गुरुदास चटर्जी

ननरना द्वारा प्रकाशित। पहले भाग की भूमिका में सम्पादक ने लिखा कि उनकी दृष्टि अपने दादा की रचनाओं को सम्पूर्णता में प्रकाशित करने पर टिकी है जबकि अब तक के प्रकाशनों ने खण्डित रूपों से ही काम चलाया है। बंकिम के लेख को पहले भाग में सम्मिलित किया गया जबकि नाटक 'बोधेन्द्र विकास' को दूसरे भाग में।

11 सत्यनारायणेर व्रत कथा [सन् 1913 पृ० 12 निःशुल्क वितरण हेतु] जिसे चिनसुरा साहित्य आलोचना समिति ने प्रकाशित किया।

इस पुस्तिका की भूमिका से पता चलता है कि पुरी-यात्रा के दौरान कवि बालागोर में कुछ समय के लिए एक स्थानीय जमींदार के घर अतिथि के रूप में ठहरे। जमींदार ने उनसे सरल पद्य में सत्यनारायण की कथा लिखने का आग्रह किया ताकि उनसे जुड़े घरेलू धर्मानुष्ठानों के समय उसका पाठ किया जा सके। और इसी आग्रह का परिणाम है यह पुस्तिका। जमींदार की आगामी पीढ़ियाँ चिनसुरा में ही रहीं। इस स्थान का प्रकाशन समिति के नाम से जुड़ने का यही कारण था।

12 ईश्वरचन्द्र गुप्त रचित कवि जीवनी 1858 में भवतोष दत्त द्वारा सम्पादित और डॉ. सुशील कुमार दे के प्राक्कथन के साथ। लगभग पाँच सौ पृष्ठों का यह वृहद् संग्रह है जिसमें सम्पादक द्वारा लम्बी भूमिका के साथ-साथ उपसंहार भी शामिल है। इसके अतिरिक्त सारगर्भित टिप्पणियाँ, अनुक्रमणिका और सन्दर्भ-सूची आदि भी हैं। ईश्वरचन्द्र गुप्त के बारे में पहली विस्तृत पुस्तक।

13 सामयिक पत्रे बाङ्लार समाजचित्र [1840-1905] [पत्रिकाओं में चित्रित बंगाल का सामाजिक जीवन] सम्वाद प्रभाकर के लेखों का संकलन। विनय घोष द्वारा संकलित और सम्पादित तथा डा. नरेन्द्रकृष्ण सिन्हा की भूमिका सहित। लगभग म पृष्ठों में। पूरी तरह से टीका-युक्त।

[एक यायावर साथी के पत्र, सन् 1963],
में ईश्वरचन्द्र गुप्त की चर्चा

मूल्यांकन

ईश्वरचन्द्र गुप्त [1812-1959] के जीवन और रचनाओं का मूल्यांकन करते समय, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बाङ्ला भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में वे अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती के बीच की कड़ी थे। इन दो सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच उन्होंने सम्पर्क सूत्र की भूमिका निभायी। ये परिदृश्य कई मायनों में भिन्न थे। कहने का तात्पर्य यह है कि हालांकि ईश्वरचन्द्र गुप्त के व्यक्तित्व में ऐसी स्पष्ट विशेषताएँ थी जो उन्हें अतीत से बाँधती थी फिर भी उनमें कुछ ऐसा था जो उन्हें आनेवाली पीढी के नवयुवकों और युवतियों से जोड़ता था। वस्तुत. अपने कार्यों और उपलब्धियों के द्वारा, उन्होंने नयी मान्यताओं की जमीन तैयार की जिनकी जड़े आगे चल और गहरानेवाली थी, जिनका विकास होना था। वे सचमुच एक 'हाइफ़न' की तरह थे।

उनके विचारों और भावनाओं पर जिन्दगी की कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं ने बहुत गहरा प्रभाव रख छोड़ा। बहुत ही कम उम्र में वे अपनी माँ खो बैठे। गरीब थे सो अलग। उन्हें जिन्दगी की यात्रा के यन्त्रणादायक रास्ते के हर कदम पर, तरह-तरह की कठिनाइयों से जूझते हुए, आगे बढ़ना था। गरीबी और अन्य अड़चनें —जो उस व्यक्ति को तोड़ देती हैं जिसके जीवन की शुरआत ही बुरी हो—के खिलाफ उनका एकमात्र कवच था उनका सतेज मानस और प्रत्युत्पन्नमतित्व। वे बहुत कम पढ़े थे और अंग्रेजी शिक्षा नीमहकीमी के स्तर तक भी हासिल न थी। बौद्धिक पालन-पोषण की इस कमी को उन्होंने अपने व्यक्तित्व के स्वाभाविक गुणों —परिष्करण की ताक़त, काव्य-क्षमता और बोलने तथा लिखने की योग्यता—के जरिये जरूरत से ज्यादा ही पूरा कर लिया। दरअसल इन्हीं विशेषताओं ने उन्हें सभी मुसीबतों को पार करने में मदद पहुँचायी तथा ग्रामीण परिवेश से आने के

बावजूद, कलकत्ता के समाज में, एक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण स्तर के व्यक्ति के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया।

लेकिन एक त्रासद घटना का दुखद असर जीवन भर बना रहा। उन्होंने शादी तो की लेकिन पत्नी से कोई रिश्ता न बन सका। उससे अलग रहते हुए भी इसका ध्यान रखते कि पत्नी को जीविका के लिए भटकना न पड़े। पत्नी की कुरूपता और मानसिक पिछड़ेपन को इस अलगाव का कारण माना जाता है। लेकिन हो सकता है उनके इस तरह अलग होने के पीछे कोई दूसरा गम्भीर कारण रहा हो, जिसकी ओर एक अस्पष्ट इशारा बंकिमचन्द्र ने कवि के जीवन-चरित्र में किया है। लेकिन जो भी कारण रहा हो, सिर्फ इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने उनके चिन्तन को इकतरफा बना दिया। वे सम्पूर्ण स्त्री-वर्ग के प्रति अति कठोर हो उठे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अपने कुछ पेशों और विश्वासों में उन्होंने एक रूढ़िवादी की तरह जीवन शुरू किया। लेकिन, जैसे-जैसे वे अपने सम्पर्कों के बढ़ते हुए दायरे के करीब होते गये और कलकत्ता के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में मायने रखनेवालों में उनके ताल्लुकात बढ़ते गये, वे अपनी बहुत सी पहले की कुण्ठाओं को तोड़ते हुए, कलकत्ता के समाज के बौद्धिक तबकों में फूट रही विचारों की नयी धारा के साथ, बहते गये। ज्ञान और प्रेम के लिए प्रसिद्ध, कलकत्ता के अगली पंक्ति के कई जमींदारों का संरक्षण पाने के सम्बन्ध में, भाग्यशाली होने के अतिरिक्त, आदरणीय कृष्णमोहन बनर्जी, देवेन्द्रनाथ टाकुर और कई अन्य का साथ भी उन्हें मिला। वे बंगभाषा प्रकाशिका सभा, साधारण ज्ञानोपार्जिका सभा, तत्वबोधिनी सभा, हिन्दू थियोफिलैन्थोपिक सभा, नीति तरंगिणी सभा तथा दूसरी ऐसी ही सार्वजनिक संस्थाओं की बैठकों में अक्सर जाते और विचार-विमर्श में हिस्सा लेते। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी सक्रियता उतनी ही थी जितनी कि धार्मिक क्षेत्र में।

यह सच है कि, ईश्वरचन्द्र गुप्त ने उस समय विधवा पुनर्विवाह जैसे कुछ सामाजिक सुधारों का विरोध किया, लेकिन किसी खास या सभी प्रगतिशील कदमों से उनका विरोध न था। उदाहरण के लिए 1857 के कलकत्ता यूनिवर्सिटी बिल का उन्होंने स्वागत किया और महिला-शिक्षा का भी समर्थन किया, बशर्ते वह राष्ट्रीय परम्परा पर आधारित हो। वे औरतों की सच्ची मुक्ति को परिवार के स्वास्थ्य एवं खुशी के लिए, अनुकूल मानते थे। राजनीतिक प्रश्नों के प्रति उनका दृष्टिकोण कभी-कभी निर्भयता की छाप लिए और देशभक्ति के महान भाव से भरा होता। सरकार

को गलत कर नीति का उन्होंने जमकर विरोध किया तथा अंग्रेजों और सिखों के युद्ध का जिक्र करते समय वे सिखों की बहादुरी की प्रशंसा करना न भूले।

व्यक्तिगत जीवन में ईश्वरचन्द्र गुप्त बेहद उदार व्यक्ति थे। हालांकि उन्होंने जीवन की शुरुआत बड़े अल्प साधनों के बीच की, और जीवन-यापन के लिए उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ा। 'संवाद प्रभाकर' तथा अन्य सहयोगी पत्रिकाओं के जरिए बाद में काफ़ी धन भी जुटाया। उनके द्वारा चलायी जा रही सभी पत्रिकाओं की माँग बहुत अधिक थी। उस समय के मानदण्डों के आधार पर उन्हें धनी व्यक्ति की संज्ञा भी दी जा सकती है।

लेकिन उन्हें पैसे का कोई मोह न था। इतना ही नहीं, उनकी उदारता की कोई सीमा न थी और उन्होंने सभी ज़रूरतमन्दों को आर्थिक-सहायता पहुँचायी बिना इस आशा के कि वह पैसा उन्हें वापस भी होगा। कभी-कभी वे अपने कर्जदारों को भी भूल जाते। उस वक्त बैंकिंग प्रणाली बीज रूप में थी या उसकी शुरुआत होने ही वाली थी। अतः उन दिनों, अपने या किसी विश्वसनीय के पास पैसा सुरक्षित रखने का प्रचलन था। अपने विश्वास के चलते ईश्वरचन्द्र गुप्त ने अपनी कमाई का एक हिस्सा कुछ सम्पन्न लोगों के यहाँ रख छोड़ा--लेकिन मान्यता है कि उनकी मृत्यु के साथ ही, सुपुर्द किये गये इस धन का कुछ हिस्सा विश्वासपात्र पचा गये।

उपर्युक्त पंक्तियाँ, व्यक्ति की सच्ची प्रकृति की ओर थोड़ा-बहुत इशारा कर सकती है। वस्तुतः यह प्रकृति एक खर्चीली किस्म की थी। हर्षातिरेक की किसी स्थिति में वे पूरी तरह डूब, आनन्द लेते। दूसरों से अपने सम्बन्धों के मामले में वे अति भावुक और मृदु-भाषी थे। वे लोगों के साथ घुलना पसन्द करते और साहित्य-रसिकों की मण्डलियों में रमे रहते थे। ऐसा कहा जाता है कि अक्सर दावतों में वे बहुत पैसा खर्च करते थे। किसी भी खुशी के मौक़े पर उन्हें कलकत्ता के समाज में मायने रखनेवालों की मेजबानी करने में बहुत प्रसन्नता होती। क्योंकि, खान-पान में वे स्वयं सुरुचि सम्पन्न थे। इस प्रकार जो पढ़ने से ही खाते पीते थे, उन्हें छिपा-कर उन्होंने कोई ऐसा उदाहरण नहीं प्रस्तुत किया, जो अनुकरणीय हो। यह भी सच है कि शराब उनकी एक कमजोरी थी। लेकिन उनके चरित्र की इस कमी की ओर से हम आँखें मोड़ सकते हैं, जब इस बात की ओर ध्यान जाता है कि वे भीतर से कहीं बिल्कुल अकेले थे तथा उन्हें किसी तरह के नशे की ज़रूरत थी जिससे वे मुर्दापन उत्साह में प्राण फूंक सकें। वस्तुतः आशय किसी बुरी आदत का समर्थन करने का नहीं है (और शराब की चाह निश्चय ही इन बुरी आदतों में से एक है) यहाँ सिर्फ़ उनके इस व्यवहार के पीछे मौजूद तर्क को, सहानुभूतिपूर्वक समझने का

प्रयास भर किया गया है। ऐसा व्यवहार, जिसका कोई बचाव-पक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

ईश्वरचन्द्र गुप्त, अंग्रेजों से मेल-जोल रखने के प्रति सावधान थे। जहाँ तक सम्भव होता वे अंग्रेज पुरुषों और महिलाओं के साथ से बचते। अंग्रेजी समाज के प्रति उनके इस रुख के पीछे उनकी अंग्रेजी भाषा की अज्ञानता हो सकती है। लेकिन सिर्फ यही एकमात्र कारण न था। इसके पीछे उनके गहरे देश-प्रेम और हर स्वदेशी वस्तु की चाह का भी हाथ रहा होगा। स्व. प्रो. कृष्णकमल भट्टाचार्य ने अपने संस्करणों में कहा है कि *ईश्वरचन्द्र गुप्त का स्तर समाज में और ऊपर होता यदि वे उस समय* के शासकों के लिए अपरिचित न होते। इस सन्दर्भ में विद्यासागर की स्थिति कहीं बेहतर थी, लेकिन ईश्वरचन्द्र गुप्त शासकों की कृपादृष्टि से वंचित रहे।

23 जनवरी, 1859 को ईश्वरचन्द्र गुप्त चल बसे। उनके साथी व्यापक शोक के दुख में डूब गये। इस क्षति को पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष रूप से महसूस किया गया। 'सोमप्रकाश' और 'हिन्दू पेट्रियट', नामक दो पत्रिकाओं ने स्व. कवि की मेधा और हृदय की गहराई के सन्दर्भ में, दिल को छू जानेवाली सामग्री प्रकाशित की। उनकी याद को स्थायी बनाने की बातें चल पड़ीं। उनकी मूर्ति स्थापित करने तथा उनकी जिन्दगी और उपलब्धियों को समेटते हुए एक वृहद जीवन चरित रचने के, ठोस कार्यक्रम इस दिशा में सुझाये गये। लेकिन इन योजनाओं का भविष्य धूमिल ही रहा, जैसा कि इस तरह की योजनाओं के साथ अक्सर होता आया है।

लेकिन मूर्ति हो या न हो, उनका जीवन चरित लिखा जाये या न लिखा जाये, लोगों के मन में वे बने रहे। 1885 में बाङ्ला-साहित्य के प्रवर्तक बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा रचित, पहला प्रामाणिक जीवन-चरित, प्रकाशित हुआ। उन्होंने ऐसी योजनाओं पर अमल कर गतिरोध तोड़ा ताकि आनेवाले लेखकों द्वारा विषय का सही ढंग से निर्वाह हो सके। और यह प्रयास आज भी जारी है।

परिशिष्ट-I

यहाँ नीचे, माइकेल मधुसूदन दत्त द्वारा रचित एक चतुर्दशपदी 'ईश्वरचन्द्र गुप्त' को—जिसे उनके 'चतुर्दशपदी कवितावली' (सॉनेट संख्या 75) से लिया गया है—दिया जा रहा है। यह एक बड़े कवि द्वारा अपने निकट के पूर्ववर्ती को चढ़ाये गये श्रद्धा सुमन हैं। यहाँ सिर्फ शाब्दिक अनुवाद की कोशिश की गयी है। अब चाहे इसकी जो भी सार्थकता बन पड़े।

ईश्वरचन्द्र गुप्त

'ठीक वैसे ही जैसे अल्पजीवी जल की तरंगें किसी नहर के माध्यम से
गिरती हैं बरसाती तालाब में,
कुछ समय के लिए भीषण गर्जन मचाती हुई।
दुर्भाग्य के एक थपेड़े से, ऐसी ही परिणति तुम्हारी भी हुई भद्र
बंगालियों के समुदाय में, ओह सबसे बड़े कारीगर वैद्य। मुझे
आश्चर्य होगा, यदि न रहेगा मित्र कोई सावधानी से चुनने के लिए,
तुम्हारी चिता की राख और लगन से सहेज कर रखने के लिए बनवायी
गयी समाधि में जब तक तुम रहे—जिए, व्रज-कविता के राज्य में रहे
एक चरवाहे राजा की तरह और वहाँ खुशी के अतिरेक में करते रहे
तरह-तरह के मनोरंजन।
लेकिन यमुना को पार कर चले गये मथुरा,
क्या इसी कारण ग्वालिनों का गाँव तुम्हें भूल गया?
यादों की कसौटी पर धूमिल स्वर्णिम पंक्तियों-सी आभा, क्या नहीं है
तुम्हारे नाम के चारों ओर? कितने सच्चे सोने थे तुम!'

परिशिष्ट-II

'कवियालों' के कविता-प्रदर्शनों के लिए ईश्वरचन्द्र गुप्त ने नवीन सहयोग स्वरूप, गीतों की रचना की। वस्तुतः कलकत्ता प्रवास के आरम्भिक दिनों में वे इस दल के गायकों से जुड़े रहे। इन मण्डली-गायकों की बैठकों (आसरे) में वे शामिल होते। ऐसी दो प्रतिद्वन्द्वी मण्डलियों के बीच चल रहे तुकान्त छन्दों के युद्ध में गहरी रुचि रखते तथा रवी मौसों में इस द्वन्द्व के नतीजे की प्रतीक्षा करते। इन बैठकों में अपनी भागीदारी तथा सक्रिय श्रोता की हैसियत से, उन्होंने इन कार्यक्रमों को सफल बनाने में बहुत मदद की। उनकी मौजूदगी दोनों पक्षों के लिए प्रेरणा का स्रोत थी।

अधिकतर कवियालों की ये बैठकें, उत्तरी कलकत्ता के धनी घरों में होतीं। उस समय की एक पत्रिका (द कलकत्ता मथली जर्नल, मई 1837) में प्रकाशित विवरण से इन बैठकों के संचालन की एक जानकारी मिलती है। यह विवरण पर्याप्त लम्बा है। लेकिन चूंकि यह विस्तार ऐसी बैठक की एक सही तस्वीर प्रस्तुत करता है, अतः इसे यहाँ पूरी तरह पुन. प्रकाशित किया जा रहा है। ताकि पाठकों को, अतीत की गन्ध को, उसके सभी आयामों में पकड़ने में मदद मिले।

> 'कवि' (cobbees) स्थानीय लोगों की हर पूजा, उनके आनन्द और उत्सव-धर्मिता का प्रचुर स्रोत है। रात के समय लगभग सभीसम्माननीय परिवारों में कोई-न-कोई मनोरंजन का कार्यक्रम होना ही चाहिए। ये कविताएँ एक प्रकार के अपरिष्कृत गीत हैं, जो अधिकांश जनता की रुचियों को सन्तुष्ट करते हैं। जब किसी अमीर बाबू की इच्छा इस मनोरंजन को अपने घर करने की होती है तब सामान्यत. अहाते और बैठकखाने में प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। और ब्रजवासियों से उनका द्वार सजता है। सिपाहियों की वहाँ तैनाती होती है। रात के लगभग नौ और दस बजे के आसपास आदमियों का तांता निमन्त्रण

के बाहर हो उठता है। हर तरह और हर स्तर के लोग द्वार रास्ता पर टूट पड़ते हैं तथा गाली-गलौज के साथ कालर पकड़कर खींचे जाने और गिरने की परवाह न करते हुए, वे इस आनन्ददायक कार्यक्रम में हिस्सा लेने पर तुले रहते हैं। जैसे ही ढोलकियों की थापें गूंजती हैं, घर में भीड़ बेहद बढ़ जाती है। गांव-देहात से आये श्रोताओं को बिठाने के लिए काफी हंगामा और हो-हल्ला मचता है। जैसे ही चपरासियों की तेज और बार-बार गूंजनेवाली स्वर, भीड़ के बीच उठनेवाली बातचीत की बुदबुदाहट शान्त करती, वैसे ही 'कवियालों' का पहला दल—जिनमें तेरह या चौदह लोग होते—अहाते के बीच दाखिल होता है। कमर से लेकर पाँव तक लाल रंग की चादर। खुली छाती, पीठ और हाथ तथा सिर पर तिकोनी टोपी। सभी के पैरों में एक जोड़ा घुंघरू जिसकी ध्वनि, उनकी थिरकन और नृत्य में लय का समावेश करती। अहाते में घुसते ही सभी गायक दालान में प्रतिष्ठित देवता या देवियों के आगे नतमस्तक होते तथा अपने माथे पर गुरु के चरणों की धूल लपेटते (यदि गुरु ऊँची जाति के हुए)। जीत का सेहरा सिर पर देखने के लिए इन तैयारियों के बाद वे दो समान दलों में बँट जाते हैं तथा समवेत हो देवी की कृपा के वर्णन हेतु सबसे पहले एक 'टप्पा' गाते हैं। अहाते के दोनों ओर इसे दो बार गाया जाता है इसके बाद देर तक चलनेवाली 'गुरुगोमि' या 'ठकुरान' गायी जाती है, जिसमें माँ दुर्गा के माता-पिता द्वारा, अपनी पुत्री के तटस्थ भाव के कारण, व्यक्त दुःख को वर्णित किया जाता है। प्रत्येक कवि तीन या चार 'अन्तरा' से मिलकर बनता है और हर 'अन्तरा' दोनों पक्षों की ओर से दो बार गाया जाता है। बीच-बीच में 'कवियालों' नुपुर के साथ और उत्तेजनापूर्ण भावों के साथ, नृत्य प्रस्तुत करते हैं। जिससे फलस्वरूप आश्चर्य का समाँ बंध जाता है और हवा में 'वाह-वाह' के स्वर गूंज उठते हैं। प्रस्तुतीकरण के बाद पहला दल के निजी कक्ष में पहुँच कर विश्राम करने के साथ ही दूसरा दल उसी प्रकार के वस्त्रों में सज-धज उपस्थित होता है तथा पहले जैसी ही तैयारियों का निर्वाह करते हुए, उसी तरह का एक गीत [illegible] में उत्साह देता है। [illegible] सेहरा मनाता हुआ [illegible] विरोधी दल को [illegible] और [illegible] बीच आ गई। इस दल के जाते ही पहला दल पुनः [illegible] 'सखी-संवाद' का [illegible] और [illegible] प्रेम सम्बन्धी [illegible] प्रस्तुत करता है। [illegible] के [illegible] कुछ [illegible], विरोधी दल [illegible] है। [illegible]

दल के तुक मास्टर, अपनी प्रतिभा के बूते पर इनकी गूढ़ताओं को समझने में असफल होते हैं तथा उचित उत्तर नहीं दे पाते तब धराशायी पक्ष के ऊपर, आलोचनात्मक फब्तियाँ तिरस्कारस्वरूप बरसने लगती हैं, जबकि विजेता दल को शर्त और शाल देकर सम्मानित किया जाता है। हर दल अपनी बारी में अपनी विशेषताओं का हवाला देते हुए दो या तीन गीत प्रस्तुत करता है। सबसे पहले दोनों दल 'बद्रूक' नाम के भद्दे गीतों में, दिल और दिमाग से डूब जाते हैं। जिन शब्दों में इन गानों की अभिव्यक्ति होती है उन्हें सुनकर दिल दहल उठता है। लेकिन जिस गहरे ध्यान के साथ बाबू लोग उन्हें सुनते है, दिल से निकली वह खुशी जो उनके चिकने चेहरों पर चमकती है तथा सिर हिला-हिलाकर अपनी जिस स्वीकृति का इजहार करते हैं, उसके चलते 'कबियालों' का मनोबल बढ़ता है। नाचते समय वे पूरी तरह अभद्र हो उठते हैं और बीभत्स शब्दों का अम्बार लगा देते हैं। जो दल ज्यादा अभद्र और भाषा के सन्दर्भ में ज्यादा अश्लील साबित होता है, साथ ही बेहतर ढंग से प्रस्तुत करता है, वह इस प्रतियोगिता में विजयी घोषित होता है और उसे उचित पुरस्कार मिलता है।

जो दल जीतता है उसे सार्वजनिक सड़कों पर, दर्शकों के हर्षातिरेक, ढोलों की थापों के बीच सुबह के गीत गाते हुए जाने की अनुमति मिलती है। पुरुषों की ही तरह महिला-गायिकाएँ भी (अक्सर निम्न जाति की) होती हैं। मर्यादा, परिष्कार तथा अच्छी भावनाओं से कोसों दूर, ऐसी दुनिया, जहाँ विभिन्न इन्द्रिय सुख का हर्ष के उफान के साथ जीने की परम्परा है। इन्हीं बाबू लोग इन्हें कभी-कभी घर की दावतदारी के काम पर लगाते हैं।

[यहाँ बाङ्ला के उच्चारण के पुराने रूपों का ही रखा गया है]।

परिशिष्ट-III

कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त से सम्बधित इस प्रबन्ध की तैयारी के दौरान, कई पुस्तकों से प्राप्त तथ्यों और सूचनाओं के लिए लेखक उनका आभारी है। उपयोगी होने के कारण इन पुस्तकों का उल्लेख आवश्यक है :

1. बकिमचन्द्र चटर्जी, ईश्वरचन्द्र गुप्तेर जीवन-चरित्र ओ कविता, 1885
2. ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी, ईश्वरचन्द्र गुप्त, बगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, (साहित्य-साधक चरितमाला, शृंखला की सौवी पुस्तक, 1942)
3. भवतोष दत्त (सम्पादित) ईश्वरचन्द्र गुप्त रचित कवि-जीवनी, कलकत्ता, 1958
4. भवतोष दत्त (सम्पादित) बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय : ईश्वरचन्द्र गुप्तेर जीवन चरित ओ कविता, जिज्ञासा, कलकत्ता, 1968
5. असित कुमार बनर्जी, आधुनिक बाङ्ला साहित्येर संक्षिप्त इतिवृत्त, माडर्न बुक एजेन्सी, कलकत्ता, सातवां संस्करण, *1970*

परिशिष्ट-IV

ईश्वरचन्द्र गुप्त

महत्त्वपूर्ण तिथियाँ और घटनाएँ

1812	जन्म।
1817	हिन्दू कालेज की स्थापना।
1822	माँ की मृत्यु। प्रवास हेतु कलकत्ता आगमन।
1827	दुर्गामणि से विवाह।
1830	राजा राधाकान्त देव बहादुर की प्रेरणा से धर्म-सभा की स्थापना।
	पिता की मृत्यु।
	हिन्दूवाद के विरुद्ध डफ़ (Duff) का आतंक।
1831	'संबाद प्रभाकर' का पहला प्रकाशन।
	हिंदू कालेज से डिरोजियो का निष्कासन।
	डिरोजियो की मृत्यु।
1832	'संबाद प्रभाकर' के मुख्य संरक्षक जोगेन्द्रमोहन ठाकुर की मृत्यु के साथ 'संबाद प्रभाकर' का प्रकाशन स्थगित। एक नयी पत्रिका 'संबाद प्रभाकर' का प्रकाशन
1833	पहली पुस्तक 'रामप्रसाद सेन का काली कीर्तन' का प्रकाशन। उड़ीसा यात्रा और कटक में प्रवास (1836 तक)
1836	'संबाद प्रभाकर' का पुनरुद्धार और सप्ताह में तीन बार उसके प्रकाशन की शुरुआत।
1838	साधारण ज्ञानोपार्जिका सभा की स्थापना।
	बंकिमचन्द्र का जन्म।
	देवेन्द्रनाथ टाकुर से परिचय।

	साप्ताहिक पत्रिका 'पाषण्डपीड़न' का प्रकाशन।
1847	एक अन्य साप्ताहिक पत्रिका 'संवाद साधुरंजन' की शुरुआत।
1848	दूसरी बार उत्तरी बंगाल की यात्रा।
1849	उत्तरी भारत के विभिन्न शहरों की यात्रा।
	बनारस में मनमोहन बसु से कटु-परिसंवाद।
1850	(दिसम्बर में) कलकत्ता वापसी।
1852	'संवाद प्रभाकर' में, बंकिमचन्द्र की कविताओं का पहली बार प्रकाशन।
1853	'संवाद प्रभाकर' के मासिक संस्करण का प्रकाशन।
से 1854 तक	'संवाद प्रभाकर' में, कालेज के छात्रों के बीच 'कविता युद्ध' प्रतियोगिता का आयोजन। विजेता के रूप में बंकिमचन्द्र द्वारा पुरस्कार ग्रहण।
	उत्तरी और पूर्वी बंगाल का दौरा।
	1855 तक 'कवियालों' की शृंखलाबद्ध जीवनी का प्रकाशन।
1855	कवि भारतचन्द्र राय की जीवनी का गुप्त द्वारा प्रकाशन।
1856	विधवा-पुनर्विवाह कानून स्वीकृत।
	बंकिम द्वारा अपने काव्य-संग्रह 'ललिता ओ मानस' का प्रकाशन।
1857	सिपाही-विद्रोह की शुरुआत।
	प्रबोध प्रभाकर की शुरुआत। 'संवाद प्रभाकर' में 'बोधेन्दु विकास' का धारावाहिक प्रकाशित होना।
1859	(23 जनवरी) मृत्यु।